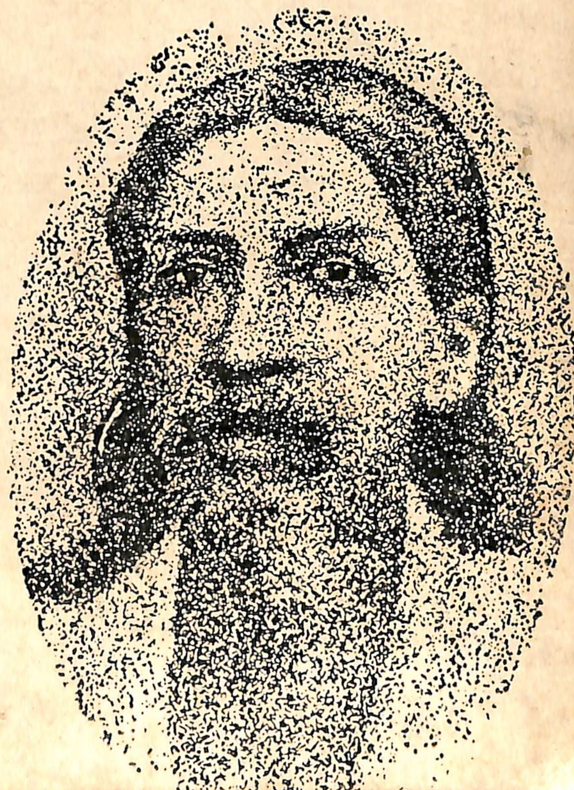
श्रीअरविन्द

मनोज दास



भारतीय साहित्य के निर्माता

श्रीअरविन्द

अस्तर पर मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ–रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

श्रीअरविन्द

लेखक
मनोज दास

अनुवादक
सदाशिव द्विवेदी

साहित्य अकादेमी

Sri Aurobindo : Hindi translation by Sadashiv Dwivedi of Manoj Das's monograph in English. Sahitya Akademi, New Delhi SAHITYA AKADEMI REVISED PRICE Rs. 15-00

प्रथम संस्करण : 1984
द्वितीय संस्करण : 1992

साहित्य अकादेमी
प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
जीवन तारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड,
कलकत्ता 700 053
गुना बिल्डिंग, दूसरा तल नं.: 304-305, अन्नासलई, तेनामपेट, मद्रास – 600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बंबई 400 014
ए.डी.ए. रंगामंदिरा, 109 जे.सी. रोड, बैंगलोर 560 002

मूल्य
SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

मुद्रक
चमन इन्टरप्राईज़ेस
आर–69/1 रमेश पार्क, लक्ष्मी नगर, दिल्ली

अनुक्रम

परिशिष्ट

1

शैशव

अब तक सोचा गया केवल किसी महान् आत्मा का स्वप्न
अथवा, मनुष्य के श्रमरत मस्तिष्क का पीड़क भ्रम
वह एक नूतन सृष्टि—
पुरातन से निःसृत हो उठेगी,
एक मौन ज्ञान मुखर हो उठेगा,
दमित सौंदर्य फूट पड़ेगा स्वर्ग सुमन में,
सुख दुःख निमग्न हो जायेंगे परमानन्द में।
एक निर्वाक् देववाणी गूंज उठेगी अंततः
वह पराचेतना पृथ्वी पर जाग उठेगी,
'शाश्वत' के चमत्कार काल नृत्य से आ मिलेंगे।

—श्रीअरविंद : **सावित्री**

'मेरे जीवन के बारे में कोई नहीं लिख सकता, क्योंकि यह मनुष्य के दृष्टि पटल के समक्ष कभी उपस्थित नहीं रहा।'

श्रीअरविंद ने अपने एक शिष्य को यह चेतावनी दी थी, जो उनकी जीवनी लिखने के लिए उत्सुक था। इस चेतावनी के बावजूद उनके जीवन के बारे में लिखना शुरू करना निस्संदेह एक तरह से विरोधाभास है। परन्तु हमें लिखना है, इसलिए हमारे लिए दूसरा सबसे अच्छा तरीका यह है कि उन्होंने स्वयं अपने बारे में जो कुछ सोचा है, उसके प्रति हम पूरी तरह अवश्य सचेत रहें। हालांकि हमारा उद्देश्य उनकी साहित्यिक उपलब्धियों की झलकियाँ प्रस्तुत करना है, परन्तु उनके जीवन की घटनाओं और प्रसंगों के उल्लेख से हम बच भी नहीं सकते।

उनके जीवन का एक विशिष्ट लेखा-जोखा तैयार करने के लिए ढेर सारी साहित्यिक-राजनीतिक घटनाएँ हमारे सामने भी अवश्य मौजूद हैं। वस्तुतः भारत के स्वाधीनता संघर्ष में उनकी जो भूमिका थी—उसका विवरण ही एक

महान कथा का रूप ले सकता है, परन्तु उनके जीवन का सही 'कुरुक्षत्र'—वह चैतन्य भूमि है, जहाँ उन्होंने अपना सर्वोच्च संघर्ष किया; इस संघर्ष का लेखा-जोखा प्रस्तुत करना आलेख से परे की चीज़ है। फिर भी, उनका अधिकांश साहित्य उसी चेतना की साहसपूर्ण यात्रा से संवर्द्धित है। किसी लेखक के लिए उस अवस्था का निरूपण या उसका उल्लेख करना, लेखक के न चाहने पर भी, प्रायः अपरिहार्य बन जाता है।

श्रीअरविंद डॉक्टर कृष्णघन घोष और स्वर्णलता देवी के तीसरे पुत्र थे और उनका जन्म 15 अगस्त, 1872 को कलकत्ता में डॉक्टर घोष के मित्र श्री मनमोहन घोष के थिएटर रोड (अब शेक्सपीयर सरणी) स्थित मकान में हुआ था। इतिहासकारों ने ऋषि राजनारायण के नाम से मशहूर श्रीअरविंद के नाना राजनारायण बोस का वर्णन बहुधा ही 'भारतीय राष्ट्रवाद के पितामह' कह कर किया है। वह रवीन्द्रनाथ के पिता के बहुत अच्छे मित्र थे और कट्टर राष्ट्रवादी थे। रवींद्रनाथ के बड़े भाई ज्योतिरिंद्रनाथ उनके सहायक थे। ऋषि राजनारायण ने राष्ट्रवाद के सिद्धांत का प्रचार करने के लिए एक गोपनीय समिति बनायी थी और रवींद्रनाथ स्वयं उस समिति में ऋषि द्वारा भरती किए गए शिष्यों में एक थे।

परंतु ऋषि राजनारायण के विचारों और क्रियाकलापों का उनके जामाता पर कोई असर नहीं पड़ा था। युवक कृष्णघन चिकित्साशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि लेकर पश्चिम से लौटे थे और जीवन के पश्चिमी मूल्यों में उनका मन पूरी तरह रमा हुआ था। वस्तुतः जन्म से ही अरविंद को अपने पिता के अंग्रेज़ी के प्रति अद्वितीय प्रेम का विशेष प्रभाव ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने अरविंद आक्रायड घोष[1] के नाम से उनके नाम का ईसाईकरण भी कर दिया था।

पाँच वर्ष का होने पर श्रीअरविन्द और उनके दो बड़े भाइयों, विनय भूषण और मनमोहन का दार्जिलिंग में यूरोपीय बच्चों के लिए सुरक्षित लारेटो कॉन्वेन्ट स्कूल में नामांकन कराया गया। श्री आर० पालित द्वारा लिखित और 1911 में प्रकाशित श्रीअरविंद की प्रारंभिक जीवनी में दार्जिलिंग प्रवास के दौरान श्रीअरविंद के बारे में निम्नलिखित अंश लिखा गया है और उस समय उनके बारे में आम धारणा भी अवश्य वही होगी, जो संभवतः श्री पालित या श्रीअरविंद के किसी अन्य प्रशंसक द्वारा दी गयी जानकारी पर आधारित होगी।

---

1. संभवतः यह नाम कुमारी आक्रायड की स्मृति में रखा गया था, जो इग्लैंड से आई थीं और श्रीअरविंद के जन्म के समय मौजूद थीं।

श्रीअरविंद के अंग्रेज़ी शिक्षक ने प्रारंभ में ही अरविंद के भीतर महानता के बीज पहचान लिए थे। श्रीअरविंद अपने शिक्षकों के सर्वाधिक प्रियपात्र थे। सबक पूरा करने में उनकी गति हमेशा तेज रही। लोग उन्हें प्रायः ही एकाग्रचिंतन में निमग्न, गहरी और उत्सुक आँखों से—मानो भविष्य में देखते हुए—परदेशी लड़कों के झुंड में घूमते हुए और प्रकृति के सौंदर्य को निहारते हुए पाते। भद्र और मधुर स्वभाव का यह निश्चल-हृदय बालक स्कूल का गौरव था।

परन्तु दो वर्ष बाद, 1879 में डॉक्टर घोष पत्नी एवं बच्चों को लेकर इंग्लैंड चले गए। अपने तीनों बच्चों को मैनचेस्टर में श्री और श्रीमती डब्ल्यू० एच० ड्रिवेट की देखरेख में छोड़कर माता-पिता भारत वापस लौट आये। दो बड़े भाई वहाँ ग्रामर स्कूल में पढ़ते और लैटिन भाषा में दक्ष विद्वान श्री ड्रिवेट अरविंद को घर पर ही पढ़ाया करते।

1885 में तीनों भाई वृद्ध महिला श्रीमती ड्रिवेट के अभिभावकत्व में लंदन चले आये। डाक्टर घोष ने ड्रिवेट दंपति को यह हिदायत दी थी कि उनके बच्चे इंग्लैंड में रहनेवाले भारतीयों के साथ मेल-जोल न बढ़ा पायें। इसलिए बच्चों की जान-पहचान या तो डॉक्टर घोष या फिर ड्रिवेट दंपति के अंग्रेज़ मित्रों से ही हो पाई थी। हालाँकि शीघ्र ही उन्होंने अपने समवयसी कुछ अंग्रेज युवकों को अपना मित्र बना लिया परंतु उनकी संख्या कम ही थी। अपने मित्रों में मनमोहन ने कवि के रूप में ख्याति अर्जित की। आस्कर वाइल्ड तथा लारेंस बिनियन उसके मित्रों में थे।

हालाँकि डॉक्टर घोष अपने बच्चों को यूरोपीय संस्कृति, व्यवहार और शिक्षा में पूरी तरह प्रवीण देखना चाहते थे परन्तु धर्म के मामले में वह यह बेहतर समझते थे कि बच्चे बड़े होकर स्वयं इसके बारे में सोचें। परन्तु श्रीमती ड्रिवेट उस अवधि तक प्रतीक्षा करनेवाली ईसाई नहीं थी। अरविंद एक रोचक घटना के बारे में कहते हैं—

'जब हम इंग्लैंड में थे तो एकबार कंबरलैंड में प्रोटेस्टेण्ट पादरियों की प्रार्थना सभा हुई। हम जिस वृद्ध महिला के घर में रहते थे अर्थात् श्रीमती ड्रिवेट, मुझे वहाँ ले गईं। प्रार्थना समाप्त होने के बाद लगभग सभी चले गए। केवल कुछ श्रद्धालु थोड़ी देर ठहरे। ठीक उसी समय धर्म परिवर्तन का कार्य संपन्न हुआ। मैं पूरी तरह अन्यमनस्क हो गया था। इसके बाद एक पादरी मेरी ओर आया और कुछ प्रश्न पूछे। मैंने कोई जवाब नहीं दिया। इस पर सभी लोग 'उसे मुक्ति मिल गयी, उसे मुक्ति मिल गयी' कहकर चिल्लाने लगे और मेरे लिए वे ईश्वर से प्रार्थना करने तथा ईश्वर को धन्यवाद देने लगे। मैं नहीं जानता था

कि यह सब क्यों हो रहा है। तब पादरी मेरे पास आया और उसने मुझसे प्रार्थना करने के लिए कहा। मुझे प्रार्थना करने की आदत नहीं थी परन्तु जैसे बच्चे रात में सोने से पहले ईश्वरानुभूति के लिए प्रार्थना करते हैं मैंने भी किसी तरह वैसा ही किया। उस समय मैं दस वर्ष का था।'

1884 में श्रीअरविंद लंदन के सेंट पॉल स्कूल में भरती हुए। उनके शिक्षक लैटिन भाषा में उनकी दक्षता से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने लैटिन के समान ही ग्रीक भाषा में अरविंद का ज्ञानवर्धन करने पर विशेष ध्यान दिया।

सेंट पॉल स्कूल में पांच वर्षों के दौरान श्रीअरविंद प्रतिभाशाली छात्र के रूप में सामने आये और साहित्य तथा इतिहास में उन्हें सर्वोच्च पुरस्कार प्राप्त हुए। अगली कक्षाओं में उनकी तेजी से प्रोन्नति भी हुई।

मैनचेस्टर प्रवास के दौरान श्रीअरविंद अपनी अत्यंत कम उम्र में ही कविताएँ लिखने लगे थे। ये कविताएँ उस नगर की 'फ़ैमिली मैगज़ीन' में प्रकाशित हुई थीं। उस समय श्रीअरविंद दस वर्ष के थे।

लंदन में उनकी शैक्षिक और रचनात्मक दोनों तरह की साहित्यिक क्रियाशीलता विशेष रूप से बढ़ गयी। उस समय का उनका अधिकांश लेखन अनुपलब्ध है। परंतु जो अंश मिले हैं, उनसे श्रीअरविंद की तीव्रानुभूति और छंदों के बारे में उनके गहन तथा स्वतःस्फूर्त ज्ञान का परिचय मिलता है। ऐसा लगता है कि कालिदास के लिए जैसा कहा गया 'अन्नचिन्ताः चमत्कारा कातरे कविता कुतः' अर्थात् 'रोटी की चिन्ता आश्चर्यजनक है; ग़रीबी में कविता कैसी ?' यह कथन श्रीअरविंद के लिए उचित नहीं था क्योंकि उनके भीतर यदि एक ओर प्रेरणा की लहरें उठती थीं तो दूसरी ओर उनके इर्द-गिर्द अभाव का विकराल स्वरूप भी मौज़ूद था। हालाँकि डा० घोष उदार और परोपकारी व्यक्ति थे परन्तु उनकी आदतें असंतुलित थीं। खुलना या रंगपुर जहाँ भी उन्होंने सिविल सर्जन के रूप में काम किया, वह दया या नम्रता की प्रतिमूर्ति बन जाते थे। ग़रीब उनके पास मदद के लिए आते और बड़े लोग मित्रता के ज़रिये। भारतीय और अंग्रेज़ दोनों समुदायों के अभिजन उनकी कोठी पर आते। उनकी कोठी 'स्वेज नहर' के नाम से जानी जाने लगी थी परन्तु अपने बच्चों को मैनचेस्टर में छोड़ने के बाद से ही खर्चीले स्वभाव के डॉक्टर घोष उन्हें आर्थिक मदद देने की ओर से आँख मूँदे हुए थे। और बच्चे जब लंदन आ गये तो ऐसा लगता है, डॉक्टर घोष ने उन्हें पैसे भेजने के मामले में सोचना ही बन्द कर दिया। परन्तु बच्चे साहसपूर्वक निर्वाह करते रहे। श्रीअरविंद को याद था कि 'उन्हें एक वर्ष तक प्रतिदिन सुबह एक स्लाइस या दो सैंडविच, रोटी, मक्खन और एक कप

चाय तथा शाम को एक सिक्के के मूल्य का सूखा हुआ क़वाब भोजन के रूप में मिलता रहा।'

एक दिन मनमोहन की ईश्वर में आस्था उठ जाने की घोषणा सुनकर श्रीमती ड्रिवेट को गहरा आघात लगा और उन्हें अपने भविष्य के बारे में काफ़ी चिन्ता हुई। उन्हें विश्वास था कि किसी न किसी दिन सारा कहर विधर्मियों के सिर टूट पड़ेगा। यह सोच कर उन्होंने किसी दूसरे के घर आश्रय ले लिया। आगे चलकर तीनों भाइयों ने अपना आवास तीन बार परिवर्तित किया।

1889 के अंत में, श्रीअरविंद सेंट पॉल स्कूल की छात्रवृत्ति पर कैंब्रिज के किंग्स कालेज में आ गये। शीघ्र ही, ग्रीक और लैटिन भाषा में कालेज के सभी पुरस्कार प्राप्त करके उन्होंने अपने शिक्षकों तथा सहपाठियों को प्रभावित कर दिया। किंग्स कालेज के दूसरे वर्ष में उन्होंने प्रथम श्रेणी में ऑनर्स (ट्रिपोज़) की परीक्षा उत्तीर्ण की।

प्रारंभ में पिता की विशेष इच्छा से उन्होंने भारतीय राजकीय सेवा (आई० सी० एस०) में नामांकन ले लिया था। साधारणतया ऐसे अभ्यर्थियों को शिक्षकों से मदद लेनी पड़ती थी, परंतु अरविंद की आर्थिक स्थिति इसके लायक न होने पर भी लिखित परीक्षा के सभी पर्चों में उन्हें सर्वोच्च अंक मिले। केवल घुड़सवारी के इम्तहान के दौरान वे विशेषज्ञ के समक्ष उपस्थित नहीं हुए और एकाकी बादल की तरह अपनी प्रकृति में विचरण करना उन्होंने बेहतर समझा। घुड़सवारी का इम्तहान देने हेतु उन्हें चार अवसर मिले लेकिन वह उसमें कभी शामिल नहीं हुए।

काफ़ी समय बाद श्रीअरविंद ने यह स्पष्ट किया कि घुड़सवारी के इम्तहान में उनके उस रवैये का तात्पर्य क्या था। उनमें आई० सी० एस० के प्रति कोई स्पृहा नहीं थी और वह किसी तरह इससे अपना पिंड छुड़ाना चाहते थे। कई तरकीबें लगाकर उन्होंने घुड़सवारी में अपने को अयोग्य साबित करा दिया और आई० सी० एस० से प्रत्यक्ष अनिच्छा भी जाहिर नहीं की। उनका परिवार उन्हें ऐसा करने भी नहीं देता।

2

प्रारम्भिक प्रेरणाएँ

'उस शाश्वत तुषाराच्छन्न प्रदेश में आने के लिए, सरस्वती ने—
अपने सरसिज देवलोक से मेरा आवाहन किया,
जहाँ गंगा दक्षिणी समुद्र की ओर गतिशील है,
और उसके तटों पर परमानन्द के पुष्प प्रस्फुटित हो रहे हैं।

श्रीअरविंद : 'एनवॉए' (विदेश से भारत लौटने के अवसर पर)

'कॉलेज के जीवन में उन्होंने अत्यन्त सम्मान के साथ अपना दायित्व निभाया और अपने प्रवास के दूसरे वर्ष के अंत में ऑनर्स—भाग एक की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उच्च स्थान प्राप्त किया। उन्हें कालेज से कई पुरस्कार मिले। जिससे पता चलता है कि अंग्रेज़ी पर उनका कितना अधिकार था और साहित्यिक योग्यता कैसी थी। किसी व्यक्ति का ऐसी उपलब्धि हासिल करने में सक्षम होना (अधिकांश अवर स्नातकों के लिए केवल इतना हासिल करना भी बहुत है), और साथ ही, आई० सी० एस० की तैयारी करते रहना असाधारण उद्यम और क्षमता का प्रमाण है। अपनी स्वाभाविक प्रतिभा के अलावा उन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य में अवर-स्नातकों के औसत से कहीं अधिक ज्ञान अर्जित किया और अधिकांश अंग्रेज़ युवकों से बेहतर अंग्रेज़ी लिखी।' (20 नवंबर, 1892)

यह पत्र किंग्स कालेज के वरिष्ठ फेलो और शिक्षक श्री जी. डब्ल्यू. प्रोथेरो ने जेम्स कॉटन (डॉक्टर घोष के मित्र हेनरी कॉटन के भाई) को इसलिए लिखा था कि घुड़सवारी के इम्तहान में शामिल न होने जैसे ग़ैर महत्त्वपूर्ण कारण के आधार पर श्रीअरविंद को आई० सी० एस० की उम्मीदवारी से खारिज किए जाने के खिलाफ़ कुछ कार्रवाई की जा सके।

परन्तु श्री प्रोथेरो या श्री कॉटन द्वारा किए गए प्रयास संभवतः सार्थक नहीं होने वाले थे। कैम्ब्रिज़ में श्रीअरविंद ने पहले तो भारतीय छात्रों के संगठन

'इंडियन मजलिस' के सदस्य और बाद में इसी संगठन के सचिव की हैसियत से भारत में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ़ क्रांन्तिकारी भाषण दिए। यह बाद में पता चला कि संबद्ध अधिकारियों को इस भाषण की खबर दे दी गई थी। ये अधिकारी श्रीअरविंद पर ऐसी कोई मेहरबानी करना उचित नहीं समझते थे कि आवश्यक योग्यताएँ न होने पर भी कमोबेश तकनीकी योग्यताओं के आधार पर 'सिविल सर्विस' में उनकी भरती की जाए (जबकि ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि अभ्यर्थियों की नियुक्ति होने के बाद भी घुड़सवारी का अभ्यास करने और इसकी परीक्षा उत्तीर्ण करने की अनुमति दे दी गई थी)।

श्रीअरविंद के हृदय में मौजूद अंग्रेज विरोधी भावनाओं की पृष्ठभूमि में उनके पिता थे, जो इस संदर्भ में किसी प्रकार भी अब भ्रमित नहीं थे। डॉ० घोष आगे चलकर भारतीयों के प्रति अंग्रेज़ों के रवैये से काफ़ी क्षुब्ध हो गये थे। वे अपने पुत्रों को यहाँ से एक भारतीय समाचार पत्र की कतरनें भेजा करते, जिनमें अंग्रेज़ों द्वारा भारतीयों से दुर्व्यवहार किए जाने की खबरें होती थीं। पुत्रों के नाम लिखे जाने वाले पत्रों में वे भारत में ब्रिटिश हुकूमत को निर्दयी कहकर आलोचना किया करते। 11 वर्ष की उम्र में ही श्रीअरविंद पर दृढ़ता से यह प्रभाव पड़ चुका था कि विश्व में एक महान क्रांतिकारी परिवर्तन तथा सार्वजनिक चेतना का समय आ रहा है और वे उसमें स्वयं भाग लेने के लिए कटिबद्ध थे।

अपने देश की आज़ादी के लिए संघर्ष करने के गौरव से युवक श्रीअरविंद कितने सचेत थे, इसका परिचय 1891 में आइरिश देशभक्त चार्ल्स स्टुअर्ट पार्नेल की स्मृति में व्यक्त उनकी निम्नलिखित काव्यात्मक श्रद्धांजलि से हमें प्राप्त होता है :

'ओ पीताभ पथप्रदर्शक प्रकाश !
अब तुम अनजाने क्षितिज के नक्षत्र हो,
मुक्तिदाता माना गया तुम्हें अभी कुछ दिन हुए,
तभी से हमारे स्वामी तुमसे,
सर्वाधिक आतंकित हैं, करते हैं तुमसे चरम घृणा,
क्योंकि वे आतंकित थे,
तुमने तलवार से भी नुकीली धार से उन्हें बींधा था—
तब तुम भी उस त्रासद जगत् की संतान थे—तुम्हारे जन्म की
ज्योतिर्मय परिणति को जिसने व्यर्थता से भर दिया है।'

'सांग्स टू मिर्टिला' 'शीर्षक से बड़ौदा में 'गोपनीय वितरण' के लिए 1895 में प्रकाशित संग्रह में संकलित उपर्युक्त तथा उनकी अन्य कविताएँ इसी अवधि में अर्थात् कवि की 18 से 20 वर्ष की उम्र के बीच लिखी गई थीं।

'सान्ग्स टू मिर्टिला' में ग्लैंकस ओर एइथन द्वारा गायी पंक्तियां, जिनमें जीवनानुभूतियों का स्पदंन है, इस विश्व के विविध पक्षों का पुनरुद-घाटन करती है—

ग्लैकस कहता है :

'रात्रि मधुर है, मधुर और शीतल—
मानो तप्त अधर प्रवहमान सरोवर को होकर,
मधुर, जबकि पुष्प सो गये हों,
और केवल चन्द्रिमा में स्रोते धुंधले और मर्मरित काननों में
खद्योतों की भांति चमक उठते हैं,
किसी शांत हृदय से और नीरवता से
संलाप करने के लिए।,

और एइथन उत्तर देती है :

'परंतु दिवस और भी मधुर है।
ऊषा की लाली के नक्षत्रों का प्रकाश पहले ही
बुझा दिया है,
और ओस से भरे भूतल से,
अधखिले मधुर फूल खिल रहे हैं।'

और ग्लैकस गाता है :

'ओ पृथ्वी ! तुम्हारी संतति नानाविध है।
गुलाब को देखो—उसका सुन्दर जन्म,
उसकी कली से क्या अग्नि-ज्वाल निकल रही है !
मानों वसंत-वायु रक्तरंजित हो उठी हो।'

इस अवधि की कविताएँ केवल रचनात्मक हर्ष या विषाद से ही नहीं बल्कि आज़ादी के लिए आइरिश जनता के संघर्ष जैसी प्रेरणादायक घटनाओं से स्फ-रित कल्पना से भी अंकुरित हुई हैं। इनमें से कुछ कविताएँ गहनतर अनुभूति और चेतना का भी परिचय देती है :

'मन के स्वामी ! वे अनवरत गतिशील हैं मेरे अंतर में।
मस्तिष्क से धूसर, सौदामिनी की दमक से देदीप्यामान और अंध
संसार को टालने के लिए सबको श्रेणीबद्ध करते हुए
तुम जामुनी रंग की पंक्तियों में—
स्वर्ण पट पर विचार लिख रहे हो।'

परन्तु आवेश ही सब कुछ नहीं था। 18 वर्ष की उम्र में लिखित और हाल ही में प्रकाश में आनेवाली **'द हार्मनी ऑफ लाइफ़'** कविता में एक लंबे सवाद के माध्यम से तीक्ष्ण और जीवंत बौद्धिकता स्वयं अभिव्यक्त हुई है।

केशव : जीवन और सबसे अधिक दिन के भोजन के बाद का वह विशिष्ट क्षण, जब निष्क्रिय रहने का पर्याप्त अवसर रहता है, श्रम में गँवाने की अपेक्षा अधिक कीमती है। इसी वजह से मैं इस क्षण के पूर्ववर्ती 12 घंटों की श्रमसाध्य गतिविधियों को सह पाता हूँ।

विल्सन : तुम तो साक्षात् विरोधाभास हो। तुम्हारी तरह जीवन के उद्देश्य के रूप में अकर्मण्यता का कुप्रयोग करना उचित नहीं है।

केशव : क्यों ? और कौन-सा उद्देश्य हो सकता है ?

विल्सन : जहाँ तक मैं सोचता हूँ—कर्तव्य।

केशव : जब तक मैं कर्तव्य का अर्थ न समझ लूँ तबतक ऐसे किसी विचार को अपनाने से सहमत नहीं हो सकता।

इस प्रकार सौंदर्य और सामरस्य के सिद्धांत के आधार पर ब्रह्माण्ड की अत्युत्कृष्ट व्याख्या करने के क्रम में धर्म क्या है, ईश्वर क्या है आदि तर्कों की सूक्ष्म जाँच करते हुए यह बहस जारी रहती है।

इंग्लैंड में श्रीअरविंद के 14 वर्षीय प्रवास के अंतिम कुछ माह लंदन में व्यतीत हुए। इस अवधि में कुछ भारतीय छात्रों ने लंदन में एक गुप्त-संगठन बनाया और इसका नाम **'लोटस एंड डैगर'** (कमल और तलवार) रखा। इसके सदस्यों ने अपने-अपने ढंग से भारत की स्वतंत्रता में योगदान करने की प्रतिज्ञा की। श्रीअरविंद उनमें एक ऐसे सदस्य थे, जिनका वर्णन ब्राउनिंग निम्न पंक्तियों में करते है :

'वह निरंतर अपनी छाती उठाये आगे बढ़ता रहा,
कभी अपनी पीठ नहीं दिखाई,
बादलों के फट पड़ने की कभी आशंका नहीं की,
भले ही धर्म का अनादर हो और अधर्म की विजय—
वह कभी हताश नहीं हुआ।'

उस समय बड़ौदा के महाराज सयाजी गायकवाड़ राव लंदन की यात्रा पर गये हुए थे। श्रीअरविंद के शुभचिंतक जेम्स कॉटन ने उनसे श्रीअरविंद की भेंट करायी और श्रीअरविंद की बड़ौदा राज्य-सेवा में नियुक्ति हो गयी।

1893 में दो विशिष्ट समुद्री यात्राएँ हुई। एक भारत से पश्चिम की ओर तथा दूसरी पश्चिम से भारत की ओर। स्वामी विवेकानन्द पश्चिमी जगत् को भारत का संदेश पहुँचाने के लिए जा रहे थे और श्रीअरविंद भारत को उसके व्यामोह से परिचित कराने के लिए पश्चिम से भारत आ रहे थे।

3

साधना का ऊषा काल : साहित्यिक और आध्यात्मिक

'एक उषा—
किसी अभिनव सृष्टि के अग्रभाग की तरह भासती,
एक महत्तर दिनकर—प्रकाश को,
एक प्रसन्न विशाल व्योम को—
अपने साथ लिए
द्रव्यों के अविकारी आदि स्रोत से प्रकट हुई,
एक प्रेरित और अद्‌भुत सुन्दरता से उमड़कर ।
मानो एक पुरातन इच्छा की नई जड़ें
फिर से उग आई हों ।'

—श्रीअरविंद : **सावित्री**

श्रीअरविंद 1893 के आरंभ में बम्बई के अपोलो बंदरगाह पर भारत पहुँचे। उनका स्वदेश आगमन बिलकुल गुपचुप हुआ, उनकी अगवानी के लिए संभवत: कोई नहीं गया । परंतु जिस प्रकार भारत माता की आत्मा ने उनका चुपचाप स्वागत किया उससे और अधिक स्वागत क्या हो सकता था ? भारत पहुँचने पर उनके भीतर एक अलौकिक शांति पैठ गई और उन्होंने बाद में अपने एक शिष्य को पत्र में लिखा भी :—

'बम्बई के अपोलो बंदरगाह पर जैसे ही भारत की मिट्टी का मेरे पैरों ने स्पर्श किया कि मुझे ऐसे आध्यात्मिक अनुभव होने लगे, जो इस विश्व से अलग के नहीं थे, अपितु उनका आन्तरिक व सनातन आधार इसी पर था। लगा कि वह अनन्त इस जड़ देश में व्याप्त है और वह सर्वव्यापी इन भौतिक पदार्थों व आकारों में निवास करता है । इस अनुभूति के साथ ही, मैंने अतीन्द्रिय जगत् और लोकों में प्रवेश किया और इनके प्रभावों को भौतिक लोक पर पड़ते देखा ।'

श्रीअरविंद के भारत पहुँचने से पहले एक दु:खद घटना हो गई थी। जिस जहाज़ से वह आने वाले थे, वह लिस्बन के निकट डूब गया। यह खबर डा० के० डी० घोष तक पहुँची। उन्हें तब तक यह पता नहीं चल पाया था कि श्रीअरविंद ने अंतिम क्षणों में दूसरे जहाज़ से यात्रा करने का निश्चय कर लिया था।

व्यथित डॉ० घोष को शीघ्र ही दिल का दौरा पड़ा। कुछ ही दिनों बाद श्रीअरविंद का नाम रटते-रटते उनकी मृत्यु हो गई। श्रीअरविंद की माता स्वर्णलता देवी की मानसिक स्थिति कुछ वर्षों से असंतुलित हो गई थी और वह देवघर में अपने पिता के यहाँ रह रही थीं। ऐसी हालत में उनसे मिलना संभवत: अधिक कष्टकर होता, इसलिए श्रीअरविंद बंबई से सीधे बड़ौदा चले गए।[1]

महाराजा महाविद्यालय में अंग्रेज़ी के प्रोफेसर नियुक्त होने से पहले श्रीअरविंद को बड़ौदा राज्य प्रशासन के भू-राजस्व, भूमि बन्दोबस्त तथा अन्य कई विभागों में कार्य करना पड़ा था। वे फ्रेंच भाषा भी पढ़ाया करते थे।[2]

भारत लौटने के लगभग साथ ही साथ उन्होंने भारतीय राजनीति में भाग लेना शुरू कर दिया। उन्हें राजनीतिक परिस्थिति की पूरी जानकारी हासिल करने में ज़्यादा समय नहीं लगा। उस समय राजनीति कुछ उदारवादी नेताओं के हाथों—या यों कहें, उनके शब्दों में सीमित थी। भारत जैसे बड़े राष्ट्र के लिए कांग्रेस तब तक एक छोटा ही संगठन था। अंग्रेज़ों द्वारा स्थापित (अत्याधुनिक) उपनिवेशवादी जटिल व्यवस्था के विरोध में उसका स्वर बहुत हल्का था। जब तक उसे पूरी तरह झकझोर नहीं दिया जाय, जब तक उसके द्वारा वास्तविक आकांक्षा की पूर्ति न की जाय, जब तक उसके सम्मुख संघर्ष के लिए प्रेरणादायक

---

1. बाद में श्रीअरविंद जब अपनी माता से मिले तो उन्होंने कहा—'लेकिन मेरा अरविंद तो बहुत छोटा था।' जब उनसे यह कहा गया कि इस अवधि में अरविंद बड़े हो गए हैं तो उन्होंने बताया कि उनके बेटे की एक उंगली पर कोई निशान था। वह निशान दिखाए जाने के बाद ही उन्होंने उन्हें अपना बेटा माना।
2. श्रीअरविंद के एक शिष्य : श्री आर० एन० पटकर (अधिवक्ता, बड़ौदा) का कथन है : 'इन्टर की कक्षा में मुझे उनका शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनके अध्यापन का तरीका विशिष्ट था—परन्तु कॉलेज में उनका व्याख्यान सुनने से ज्यादा आनन्द मंच पर उनके भाषणों से होता था। कालेज 'डिबेटिंग सोसाइटी' की बैठकों की वह कभी-कभी अध्यक्षता करते। उनके भाषण के अवसर पर कॉलेज का विशाल सेंट्रल हॉल भरा रहता। वह व्याख्याता नहीं, बल्कि उच्च कोटि के वक्ता थे और लोग पूरे मनोयोग से उनका भाषण सुना करते। बिना किसी हाव-भाव के वह खड़े रहते। भाषण उनके होंठों से एक धारा की तरह अपनी स्वाभाविक सरलता के साथ प्रवाहित होता और श्रोताओं को मंत्रमुग्ध बना देता।'

ध्येय न हो और अंततः जब तक उसका आधार इतना व्यापक न बनाया जाए कि वह सम्पूर्ण जनता को साथ लेकर चल सकें, तब तक विरोध के उस स्वर से कोई लाभ नहीं हो सकता था।

प्रारंभ में श्रीअरविंद ने छद्म नाम से बंबई की 'इंदु प्रकाश' पत्रिका में **'न्यू लैम्प्स फॉर ओल्ड'** शीर्षक से सिलसिलेवार कई लेख लिखे। कांग्रेस की उन्होंने कटु आलोचना की :

> 'जब कांग्रेस का नाम आता है तो मेरा कहना है कि इसके उद्देश्य गलत हैं। उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जिस भावना से कांग्रेस बढ़ रही है, उसमें गहरी निष्ठा और पूरी दृढ़ता का अभाव है। उसकी कार्यपद्धति सटीक नहीं है। जिन नेताओं में कांग्रेस का विश्वास है, वे सही ढंग के नेता नहीं हैं...संक्षेप में, हमारे समक्ष फ़िलहाल अंध नेतृत्व है, अंध नेतृत्व नहीं तो एकाक्ष नेतृत्व अवश्य है।'

इन लेखों से उस समय के मंद गति राजनीतिक जगत् में अवश्य ही हो-हल्ला मचा होगा, क्योंकि महाराष्ट्र के विख्यात नेता श्री महादेव गोविन्द रानाडे ने उस पत्रिका के मालिकों को ऐसे 'राजद्रोहात्मक' लेखों का प्रकाशन बंद कर देने के लिए कहा था। संपादक ने श्रीअरविंद से संयमित होकर लिखने का अनुरोध किया। इस पर श्रीअरविंद ने राजनीति के व्यावहारिक पक्ष को छोड़कर, उसके दार्शनिक पक्ष पर लिखना शुरू कर दिया। परंतु उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि यह क्रम वे बहुत दिनों तक जारी नहीं रख सकेंगे।

श्रीअरविंद के मित्रों ने बंगला भाषा के एक युवक साहित्यकार दीनेन्द्रकुमार राय को इस बात के लिए सहमत किया कि वह बड़ौदा जाकर श्रीअरविंद के साथ रहें और उन्हें बोलचाल की बंगला भाषा में पटु होने में सहायता करें। बड़ौदा प्रवास से संबंधित श्रीराय की स्मृतियाँ अत्यन्त रोचक और महत्त्वपूर्ण हैं तथा उनसे इस बात की झलक मिलती है कि अरविंद का रहन-सहन कैसा था। भोजन और निद्रा की तनिक भी परवाह किये बिना श्रीअरविंद अपने इर्द-गिर्द मच्छरों के झुंड से बेखबर होकर अध्ययन में काफ़ी रात गए तक डूबे रहते।

गायकवाड़ न केवल अपने महत्त्वपूर्ण काग़जात और भाषणों का मजमून तैयार कराने के लिए श्रीअरविंद पर आश्रित रहते थे, बल्कि ऐसा भी प्रतीत होता है कि वह कभी-कभी उनके साथ कुछ समय भी बिताना चाहते थे और उन्हें ले आने के लिए सवारी भेजा करते। श्रीअरविंद कभी चले जाते और कभी नहीं जाते। श्री राय को यह देखकर आश्चर्य होता था कि जहाँ एक ओर सभी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति गायकवाड़ की कृपा दृष्टि पाने का अवसर पाकर खुशी से उछल पड़ते थे, वहीं दूसरी ओर श्रीअरविंद को इसका क़तई आकर्षण नहीं था। न ही, उन्होंने कभी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाने की परवाह ही की। एक

बार श्री राय ने उनसे पूछा कि इतने प्रभावी गुणों के धनी होने के बावजूद बड़ौदा के सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठा पाने की आकांक्षा का उनमें न होना कैसे संभव था। श्रीअरविंद ने बड़ा साधारण-सा उत्तर दिया—'इसमें मुझे किसी आनंद का अनुभव नहीं होता।'

श्री राय को स्मरण था कि, वे (श्रीअरविंद) अकेले थे और आमोद-प्रमोद के पीछे भागने में क्या मज़ा आता है इस बात से बेखबर थे। अनुचित तरीके से वह एक अधेला भी खर्च नहीं करते—हालाँकि महीने के अंत तक उनके पास कुछ शेष भी नहीं रह जाता था।'

श्री राय ने अंत में बताया है कि श्रीअरविंद इस लोक के व्यक्ति नहीं थे। वह स्वर्गलोक के कोई देवता थे, जिन्हें किसी शापवश इस लोक में आना पड़ा।

अगले अध्याय में हम इस बात पर विचार करेंगे कि उस रक़म का क्या होता था, जो श्रीअरविंद को वेतन के रूप में प्राप्त होता था। यहाँ हमें उस अवधि में उनकी आध्यात्मिक और साहित्यिक गतिविधियों पर गहराई से विचार करना है।

निस्सन्देह श्रीअरविंद की रुचि गुह्य विद्या में थी। परन्तु 1904 तक उन्होंने सजग ढंग से योगाभ्यास शुरू नहीं किया। इन विषयों में अभीप्सा न होने पर भी समय-समय पर उन्हें आश्चर्यजनक ढंग से आध्यात्मिक अनुभूति होती थी। उदाहरण के लिए, एक दिन शहर जाते समय अचानक उनकी सवारी के दुर्घटनाग्रस्त होने का दुर्योग दिखा। जैसे ही उन्हें उस स्थिति का आभास हुआ और उन्होंने अपने मन में संकट दूर करने की बात सोची, वहाँ एक दिव्य ज्योति प्रकट हुई, जिसने स्थिति पर काबू पा लिया और सवारी को सुरक्षित मार्ग पर ला खड़ा कर दिया।

श्रीअरविंद ने अपने कुछ शिष्यों के साथ संध्या समय होने वाले विचार-विमर्श के दौरान एक दूसरे अनुभव का उल्लेख किया है :

> 'उस समय मेरे यूरोपीय मनोभाव में देवताओं पर कोई विश्वास नहीं था। मैं कर्नाली (चांडोड के निकट) गया हुआ था, जहाँ अनेकों मंदिर हैं। वहाँ एक काली मंदिर है, जिसकी मूर्ति देखते ही मुझे वहाँ साक्षात् देवी का आभास हुआ और पहली बार मैंने दिव्य सत्ता की सन्निधि पर विश्वास किया।' (कई दशकों बाद 1939 में श्रीअरविंद ने इन अनुभवों का वर्णन करते हुए दो सॉनेट (चतुर्दशपदियाँ) लिखीं, जो इस पुस्तक के परिशिष्ट में रखी गयी है)।

तत्पश्चात् 1903 में शंकराचार्य पहाड़ी की यात्रा के लिए कश्मीर जाते समय श्रीअरविंद को मूर्त रूप में शून्य अनन्त का अनुभव हुआ—साधारणतया ऐसा अनुभव दीर्घकालीन साधना के बाद ही संभव हो सकता था।

1904 से ही वे गंभीरतापूर्वक योगाभ्यास शुरू कर पाये। उन्होंने प्राणायाम से शुरू किया और अत्यंत अल्प अवधि में ही इस तरह के आसनों का यथासम्भव अभ्यास कर लिया। उन्हें स्मरण था :—

'उस समय मैं कविता लिखा करता था। प्राय: मैं प्रतिदिन पाँच से आठ या दस पंक्तियाँ, इस तरह एक माह में लगभग 200 पंक्तियाँ लिखा करता। अब प्राणायाम के बाद मैं आधे घंटे में ही लगभग 200 पंक्तियाँ लिखने लगा। पहले मेरी स्मृति बहुत कमज़ोर थी परन्तु अन्तःप्रेरणा का अवतरण होने के बाद मैं उसी क्रम में उन पंक्तियों का स्मरण कर लेता और किसी भी समय आसानी से उन्हें लिख सकता था। मानसिक क्रियाकलापों की शक्ति बढ़ने के साथ ही मुझे अपने मस्तिष्क के चारों तरफ़ एक तरह की विद्युत् ऊर्जा का आभास होने लगा।'

परन्तु उन्होंने ऐसे अभ्यासों की सीमाएँ भी महसूस की। 1932 में लिखे गए एक पत्र में उन्होंने बताया है कि :

'चार वर्षों तक प्राणायाम और अपने अन्य अभ्यासों के बाद केवल इतना ही परिणाम निकला—स्वास्थ्य वृद्धि, ऊर्जा का प्रवाह, मनोभौतिक क्रिया, काव्य रचना-शक्ति का धाराप्रवाह, सूक्ष्म-वीक्षण शक्ति, प्राय: जाग्रतावस्था में (ज्योतिर्मय रूप और आकृतियाँ आदि) किन्तु इसके बाद एक ठहराव आ गया।'

उनका कतिपय योगियों से संपर्क हुआ था। परन्तु उनके योगाभ्यास में उन योगियों की कोई पहल नहीं थी। महाराष्ट्र के योगी लेले ही इस संदर्भ में उनकी कुछ ठोस सहायता कर पाये। श्रीअरविंद के जीवनी लेखक श्री अम्बालाल पुराणी को 1916 में लेले ने बताया था कि "जब मुझे बड़ौदा जाने की ख़बर मिली तो इस बात का अंतर्ज्ञान हो गया था कि मुझे किसी महान आत्मा को अन्तःप्रेरणा देनी है।" श्री अरविंद ने स्वीकार भी किया है :

'मैं लेले का बहुत ऋणी हूँ कि उन्होंने मुझे यह पथ प्रदर्शित किया। वे कहते थे, 'ध्यानमग्न होकर बैठो, परंतु सोचो मत, केवल अपने मस्तिष्क की ओर देखो। तुम पाओगे कि मस्तिष्क में विचार आ रहे हैं, इससे पहले कि वे विचार आ जायें, तुम उन्हें अपने मस्तिष्क से तब तक बहिष्कृत करते रहो, जब तक कि तुम्हारा मस्तिष्क पूर्ण रूप से निस्तब्धता को आयत्त करने के योग्य न हो जाये।'—इससे पहले मैंने कभी यह नहीं सुना था कि विचार मस्तिष्क में प्रत्यक्षतः बाहर से आते हैं, परंतु सत्य या संभावना पर संदेह करने का विचार भी मेरे अंदर कभी नहीं हुआ था। मैं केवल बैठकर ध्यान करने लगा। क्षण भर में ही मेरे मस्तिष्क में किसी ऊँचे पर्वत पर निर्वात वायु की जैसी स्थिति की निस्तब्धता छा

जाती और तब मैं अपने मस्तिष्क में बाहर से एक-के-बाद-एक विचारों का आगमन प्रत्यक्ष रूप से देखता; उनके प्रवेश करने के पहले ही मैं उन्हें फेंक देता और मस्तिष्क पर नियंत्रण कर लेता । तीन दिन में मैं पूर्णतः स्वतंत्र हो गया। उसी क्षण से यथार्थ में मेरी मानसिक सत्ता बन गई, एक मुक्त बुद्धि—एक विश्व-मन, जो विचारों के कारखाने में किसी श्रमिक की भाँति व्यक्तिगत विचार के संकीर्ण दायरे में सीमित नहीं थी अपितु वह सत्ता के सैकड़ों क्षेत्रों से ज्ञान अर्जित करने वाली एक ज्ञान की ग्रहणवर्ती और इस विशाल दृष्टि और विचार के साम्राज्य में वांछित वस्तु की स्वतंत्र चयन-कर्त्री थी ।'

फिर बहुत दिनों तक लेले की सहायता की जरूरत नहीं रही । इस प्रकार, अपनी निजी खोज तथा लक्ष्य के प्रति जन्मजात निष्ठा से उन्होंने चेतना के महा-व्योम में प्रवेश किया और अनुभूतियों के स्तरों को पार कर, जैसे निर्वाण[1] तथा नीरव ब्रह्म की अवस्थाओं में होकर वे साक्षात्कार के सर्वथा अनधिकृत क्षेत्रों में जा निकले, जिनकी पूरी शोध और सिद्धि उन्होंने अपने पांडिचेरी-प्रवास में प्राप्त की।

श्रीअरविंद के जीवन की इस अवधि में उनकी साहित्यिक रचनाशीलता विभिन्न अन्तःप्रेरणाओं से युक्त थी। उन्होंने भारत में महान् संस्कृत ग्रंथों तथा सहज ही आत्मसात की हुई अन्य भाषाओं के साहित्य का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। भारतीय साहित्य के हृदय में उनकी पैठ के परिणामस्वरूप उनकी कविता में एक नई जीवन्तता की शुरूआत हुई । यह उपलब्धि बड़ौदा में उनकी महानतम काव्यकृतियों में तथा अंतर्दर्शन की सर्वोच्च अभिव्यक्ति **'सावित्री'** के लेखन में द्रष्टव्य है, जिसकी रचना उन्होंने पांडिचेरी में बहुत बाद में की। इसकी रचना 1950 में, उनके निधन से कुछ समय पहले ही पूरी हुई थी। परंतु इसकी प्रारंभिक पांडुलिपि उपलब्ध नहीं है ।

उन्होंने चंडीदास और ज्ञानदास जैसे प्राचीन बंगला कवियों की अनेक पद रचनाओं का अंग्रेजी में अनुवाद किया। साधारण अर्थ में ये कविताएँ अनुवाद नहीं बल्कि विशिष्ट रूपान्तरण हैं। मौलिक कविता के प्रवाह तथा भाव की मधुरता को उन्होंने आश्चर्यजनक ढंग से सजीव बनाए रखा है, जो अनुवाद में शायद ही देखने को मिले।

---

1. 1937 में अपने शिष्य के नाम लिखे गये किसी पत्र में श्रीअरविंद ने लिखा था– "जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैंने अनचाहे ही निर्वाण के क्षेत्र में प्रवेश किया, बल्कि यों कहूँ कि निर्वाण ही बिना मेरी इच्छा के संयोगवश मेरे भीतर प्रविष्ट हुआ—वह भी मेरे योगी—जीवन की शुरूआत के बहुत बाद नहीं।"

राधा निम्न पंक्तियों में कृष्ण को बताती है कि वे उनके प्रेम का उचित रीति से प्रतिदान करना नहीं जानते :—

'मैं मर कर पुनः जन्म लूंगी,
बनूंगी नन्द का सुत, वही ब्रजबालाओं का आनन्दघन,
और तब बनाऊँगी तुम्हें राधा—कुंचित केशमंडित
एक विहँसते शिशु का मुख।
तब करूँगी मैं प्यार और फिर प्रयाण
जब तुम जाते रहोगे कदम्ब की डालों के नीचे से,
पनघट की ओर सुबह हो या शाम, उस कदम्ब से टिक कर
मैं बंसी पर मधुर रागिनी छेड़ती रहूँगी।'

प्रसिद्ध वैष्णव कवि विद्यापति द्वारा उसी राधा-कृष्ण को विषयवस्तु बनाकर मैथिली में लिखे गये गीत भी अपनी पूरी रोमांटिक भव्यता के साथ श्रीअरविंद के अंग्रेज़ी अनुवाद में दीप्तिमान है :

'खेलती हुई भी खेल नहीं रही, ऐसी तो नवोढ़ा
शायद सह न सके—पड़ती नज़रों को, इसी से
देखती हुई भी अनदेखी करती हुई कि कहीं दिख न जाए
अपनी ही सखियों की आँखों से (झाँकता) उपहास !
सुनो, सुनो तो माधव, मेरी बात।
बिल्कुल सही बात बता रही हूँ तुम्हें।
राधा को देखा है इन आँखों ने आज,
वह बाला है अप्रतिम।'

उन्होंने संस्कृत की तीन उल्लेखनीय कृतियों का अनुवाद भी किया, जो इस प्रकार है···कालिदास का **'मेघदूत'** और **'विक्रमोर्वशीय'** एवं भर्तृहरि का **'नीतिशतक'**। दुर्भाग्यवश 'मेघदूत' की पांडुलिपि इस अवधि की मौलिक कविताओं तथा अनेक अन्य अनुवादों की पांडुलिपियों के साथ लुप्त हो गई, परंतु **'विक्रमोर्वशीय'** (**द हिरो ऐंड द निम्फ**) की पांडुलिपि भाग्यवश बची रह गई। डा. के. आर. श्रीनिवास आयंगार का कथन है : 'श्रीअरविंद के लिए **'विक्रमोर्वशीय'** का अंग्रेज़ी छंदों में अनुवाद करना चंडीदास, भर्तृहरि या चित्तरंजन की कृतियों के अनुवाद से भी कठिन कार्य था, परंतु वे इस कार्य में पूरी तरह सफल हुए। कालिदास का यह **'विक्रमोर्वशीय'** नाटक रोमानी और लुभावना है, जो दैनन्दिन अनुभवों से विचित्रतया और आकर्षणतया दूर है, और जिसे रूपान्तरित करना सरल नहीं परन्तु श्रीअरविंद ने यह असाधारण प्रयास किया और परिणामतः **'द हिरो ऐंड द निम्फ'** हमारे समक्ष आया। लारेंस बिनियन की **'शकुंतला'** की तरह श्रीअरविंद का **'द हिरो ऐंड द निम्फ'** भी

मूल कृति के रस और ऊष्मा को अच्छी तरह पुनर्प्रस्तुत करता है और यह दिखाने में उसे सफलता मिली है कि कालिदास विदेशी पहनावे में भी सटीक दिखते हैं।'

बड़ौदा प्रवास के दौरान लिखी गई उनकी कविताओं में 'उर्वशी' भी है, जो कालिदास की एक पुनर्रचना से प्रेरित है; जो ऋग्वेद की शाश्वत सुन्दरी 'भौतिक भुजाओं की देवी पर विजय' की कहानी पर आधारित थी।

'स्वयं विकसित वृन्तहीन पुष्प 'उर्वशी' जैसा कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने वर्णित किया है, युगों-युगों तक भारतीय कवियों के लिए अत्यंत सम्मोहक आकर्षण रही है। अत्यंत प्राचीन कथा के अनुसार इस स्वर्ग सुंदरी पर मर्त्यलोक का 'पुरुरवा', यद्यपि वह नायक है, आसक्त था। नायक और सुंदरी वर्षों तक साथ-साथ रहे, उनके प्रेम में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई और उर्वशी अपना कार्यभार पुनः सँभालने के लिए लौटकर अपने स्वर्ग देश नहीं गई। अंत में, असंतुष्ट देवगण जब उर्वशी को वापस ले गए तो पुरुरवा को असीम व्यथा हुई। दीर्घकाल तक वह उसकी खोज में लगा रहा। अंत में उसे उर्वशी का पता चल गया, पर अब उनके पुनर्मिलन में अनेक अड़चनें थीं। परंतु नायक के प्रेम की गहनता, कठोर साधना और साथ ही उर्वशी की प्रतिक्रिया से अंत में नियति के नियंता असंतुष्ट देवताओं की सहानुभूति जाग्रत हुई और प्रेमियों को स्वाभाविक, स्थायी पुनर्मिलन का वरदान मिला।

श्रीअरविंद ने अत्यंत उत्कृष्टता से इस विषयवस्तु को निष्पन्न किया है। चाहे त्रासदी की स्थिति हो या भावातिरेक का चरम क्षण हो, इसमें हर जगह महाकाव्यात्मक गरिमा मौजूद है।

केशी दैत्य नामक अपहरणकर्त्ता द्वारा मुक्त किए जाने के बाद उर्वशी नायक को किस रूप में प्राप्त होती है, इसका वर्णन निम्न पंक्तियों में है :

> 'अपनी अलकों से घिरी पूर्ण वह पड़ी थी···
> दुर्व्यवहृत, ज्योतिर्मयी कुमुदिनी-सी।
> जहाँ वह पड़ी थी, मसृण परिधान के नीचे से
> झाँक रहा था एक कंधा और स्वर्ण कमल से
> अनावृत हो रहे थे स्तन युगल।
> अपरूप भंगिमा में उठी एक सुनहली बाँह फैली हुई थी।
> चकाचौंध करती उज्ज्वलता के विस्तार पर
> उष्ण और सुशोभ रूपराशि पड़ी थी अनिन्द्य रेखाओं में उभरी,
> और उसका मुख···
> जैसे हिमानी पर उतरा हो पूर्णचंद्र।

परिश्रांति के इस दृश्य की तुलना में हम उनके मिलन-क्षणों को भी निम्न पंक्तियों में देखते हैं :

परंतु सहसा आनन्द का एक अप्रतिहत समुद्र
हहराता हुआ आकर निगल गया सुनहरे बालुका विस्तार को,
हर्ष और विस्मय से एक चीख़ निकली···
पुरुरवा के होठों से, और काँपते हुए उसने उर्वशी को उठाकर अपने धड़कते सीने से लगा लिया···
उसकी अपूर्व केशराशि बिखर गई, हवा ने उन्हें अधिकृत करके फैला दिया पुरुरवा के कंधों पर,
और उसके गालों ने एक कोमलता का अनुभव किया।
हाँफती हुई उद्धत-सी उर्वशी अस्फुट स्वरों में बुदबुदाती हुई चुप-चाप पड़ी थी, जैसे बर्फ़ की फुहारों में अस्पष्ट-सा दीख पड़ता है, कोई क्षीणकाय पेड़।'

यह कविता वहाँ खत्म होती है, जहाँ पुरुरवा और उर्वशी अंतिम रूप से एक हो जाते हैं, किन्तु इनमें अंतिम पंक्तियों का महत्व तो प्रेमी-युगल को प्राप्त आनन्द से भी बढ़कर है। पुरुरवा वहाँ अमरों के लोक में पहुँच गया है—

'परंतु नीरव और विशाल आकाश में होकर, नीचे—
हरी-हरी-सी श्रमरता, अपर्सजित पृथ्वी घूम रही थी।'

यह प्रेम की उदात्त विजय थी, परंतु पृथ्वी और नश्वरता का इसमें कोई स्थान नहीं था। हाँ, बड़ौदा में लिखी गई श्रीअरविंद की एक दूसरी लंबी कविता **'लव ऐंड डेथ'** में नायक-नायिका दोनों ही पृथ्वी के नश्वर पात्र हैं और यहाँ प्रेम की विजय विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। (जो भी हो, पुरुरवा और उर्वशी की, कथा काल की उस धुंधली आभा से संबंधित है,जब पृथ्वी अपनी शैशवावस्था में थी। परंतु **'लव ऐंड डेथ'** की कथा काफ़ी बाद के समय से संबंधित है, जहाँ एक तरफ़ मनुष्य पृथ्वी के साथ अधिक गहराई से जुड़ चुका है और दूसरी तरफ़ उसकी अभीप्साएँ परिष्कृत हो चुकी हैं एवं स्वर्गिक गुणों पर आधिपत्य करने में वह सक्षम हो चुका है)

'प्रारंभिक और दीप्तिमान विश्व की वनस्थली में···
प्रेम जब अपने लिए निर्मल, उष्ण और नवीन था···
अपनी युवा प्रेयसी प्रियंवदा के साथ रु रु क्रीड़ारत था,
जैसे प्रभात किसी फूल के साथ।'

एक दिन प्रातःकाल साँप के काटने से प्रियंवदा की मृत्यु हो गई। अत्यंत व्यथित होकर लेकिन साथ ही दृढ़ता से हृदय को संतुलित किए हुए रु रु उस समय तक इधर-उधर घूमता रहा जब तक कि प्रेम के देवता से उसकी भेंट नहीं हो गयी। देवता की सहायता से वह मृत्युलोक में कष्टपूर्ण प्रवास के बाद प्रियंवदा को पुनर्जीवित करने में सफल हो गया। हालाँकि ऐसा करने के लिए रु रु को

अपना आधा जीवन प्रियंवदा को दे देना पड़ा, फिर भी मृत्यु की निरंकुशता पर यह एक विजय थी।

'लव ऐंड डेथ' पृथ्वी के निवासियों···धर्म, वर्ण, जाति, राजनीति या किसी तरह के संस्थानों के बंधन से मुक्त आत्माओं की स्वतंत्रता का भी गीत है :

'तब पृथ्वी अपनी स्वतंत्रता में सजीव और उर्वर थी,
वहाँ एक स्वतंत्र और सीमाहीन प्रजापति का साम्राज्य था
उसके विचार विकृत नहीं हुए थे, उसका हृदय मुक्त था हर बंधन से
उसने शीघ्र ही प्रत्युत्तर दिया···प्रकाश को।'

अपने अन्त तक यह पृथ्वी का गीत है। 'उर्वशी' कविता का अंत मुक्त पृथ्वी में होता है और उसकी तुलना **'लव ऐंड डेथ''** का अंत वहाँ होता है जहाँ हरित विश्व अपने उष्ण प्रकाश के साथ रु रु और प्रियंवदा के चारो ओर उच्छ्वास ले रहा होता है :—

जगती का प्रभात भास्वर हो रहा था—
कोयल की कूक से बच्चो की किलकारी से ।।[1]

विश्व में पाये जानेवाले आख्यानों तथा पौराणिक कथाओं के समृद्ध भंडार से अपने लिए सर्वोत्तम उपयुक्त ढाँचा चुनने की उदात्त प्रेरणा हेतु श्रीअरविंद का रचना क्षेत्र आज की भारतीय विषय वस्तुओं की प्रचुरता के बीच हमेशा की तरह बहुत विस्तृत था। ऐसे ढाँचे का प्रयोग उन्होंने अपने पांच अंकों के उस

---

1. कविता के प्रति लोगों के रुख में समय के साथ जो परिवर्तन आता है, उससे कवि का परिचित होना यहाँ उल्लेखनीय है। **'लव ऐंड डेथ'** के प्रकाशन का प्रयास करनेवाले इंग्लैंड में अपने एक शिष्य का उत्साह कम करते हुए श्रीअरविन्द ने 1984 में एक पत्र लिखा :—

'मुझे ऐसी आशंका है कि **'लव ऐंड डेथ'** की सफलता को लेकर तुम किसी भ्रम में हो। **'लव ऐंड डेथ'** की रचना उस समय से संबंधित है, जब मेरेडिथ ओर फिलिप्स लेखन शुरू कर रहे थे और ईट्स तथा ए० ई० का लेखन परिपक्व नहीं बल्कि शैशवावस्था में था। उस समय से अबतक हवा बदल चुकी है और ईट्स तथा ए० ई० अतीत की बालुका-भूमि पर निस्सहाय से पड़े हैं। दूसरी तरफ़ **'लव ऐंड डेथ'** का शिल्प और उसकी अन्य विशेषताएँ युद्धोत्तर लेखकों तथा साहित्यक आलोचकों के लिए अभिशाप जैसी चीजें हैं। मुझे संदेह है कि यदि इसकी उपेक्षा न भी की गयी और ऐसी संभावना ही अधिक है, तो भी इसे उस साहित्यिक मान-दण्ड का क्षीण और विलम्बित अनुकरण माना जाएगा, जो बहुत पहले पैदा हुआ और दफ़ना दिया गया। मैं स्वयं इस अर्थ में इस रचना को नहीं लेता परंतु इसकी सफलता के लिए मेरे नहीं, बल्कि आधुनिक बुद्धिजीवियों के विचारों का ही महत्त्व है। यदि लेखन के समय इसका प्रकाशन हो जाता तो सफलता मिल सकती थी; परन्तु अब यह मैं अवश्य जानता हूँ कि इंग्लैंड में ऐसे अनेक लोग हैं, जिनके हाथों पड़ने पर वे इसे उत्साह से पढ़ेंगे, परन्तु मैं ऐसा सोच नहीं पाता कि यह रचना उन हाथों तक पहुँचेगी भी।'

नाटक **'पर्सियस द डेलिवरर'** में किया, जिसके प्राचीन आख्यान में किसी वीरतापूर्ण मिथक के मौलिक चरित्र का अभाव था। ऐसा करके उन्होंने एक ऐसा केन्द्र बनाया, जिसके चारों ओर रानी एलिज़ाबेथकालीन माडल के आधार पर जीवन-स्पंदन और मानव-स्वभाव की रोमांटिक कथा के दृश्य पैदा हो सकें।

परंतु यह नाटक इससे भी कुछ और अधिक है। समुद्र देवता पोसीडन के प्रति राज माता का श्रद्धाभाव न होने का प्रायश्चित करने के लिए समुद्री राक्षस एण्ड्रोमेडा को चट्टानों के बीच बंदी बनाकर भक्षण करना चाहता है। वहाँ पर्सियस एण्ड्रोमेडा को बचा लेता है और इस कार्य में हम सत्य की विजय देखते हैं। पर्सियस दैवी गुणों से संपन्न नायक है परंतु एण्ड्रोमेडा भी विद्रोह की भावना से दीप्त है। वह अंध-विश्वासों और रीति-रिवाजों के झूठे नियमों तथा आत्मा का हनन करनेवालों की कट्टर विरोधी है। जब उसके पिता उससे कहते हैं :

'बहुत ऊपर है···
शक्तिशाली देवताओं का निवास···
मनुष्य को शासित करनेवाले नियमों से,
नहीं हो सकते वे संचालित···
मर्त्य निर्णयों से।
पोसीडन की इच्छा है···ये लोग
उसकी वेदी पर बलिदान करें।
इसे चुनौती नहीं दी जा सकती।'

तो वह उत्तर देती है :

'इसे चुनौती दी जायेगी। तुम्हारा देवता रहे क्षुधित।'

निम्नलिखित भविष्यवाणी (पर्सियस की) और चुनौती के स्वर में नाटक का अंत होता है।

'परंतु निम्नस्तरीय अप्रत्यक्ष शक्तियाँ जीवित हैं,
आरोहण की गति धीमी, परंतु पर्याप्त समय है,
सत्य विकसित होगा, बढ़ेगा सामंजस्य और वह दिन भी आयेगा···
जब मानव अपने में एकता और निकटता महसूस करेगा।
इसी बीच एक कदम आगे बढ़ना कुछ उपलब्धि तो है ही,
क्योंकि पृथ्वी धीरे-धीरे स्वर्ग की ओर बढ़ेगी,
जबतक कि उसकी धुँधली आत्मा प्रकाश न बन जाये।'

अलीपुर षडयंत्र से संबंधित मामले के काग़जात के बीच लगभग आधी

शताब्दी तक लुप्त रहने के बाद 1951 में **'द वज़ीर्स आफ़ बसरा'** शीर्षक नाटक पुनः सामने आया, जिसमें इस अवधि के मनोरंजक नाट्य-रोमांस का अंत भी एक भिन्न तरह की विषमता के विरुद्ध चेतावनी के स्वर में होता है। यह 'अरेबियन नाइट्स' से ली गई एक कथा का नाट्यरूपान्तरण है।

'प्यारे और अच्छे, और एक दूसरे के प्रेम व हुस्न के लिए उपयुक्त, बच्चों !
मेंहदी लगे हाथों को पृथक् करनेवाली मौत जबतक आ नहीं जाती,
पृथ्वी पर खुशियाँ मनाओ और उससे भी आगे स्वर्ग में।
इसी बीच सोच लो···जीवन अपनी मुस्कान के नीचे—
गंभीर है, और उत्साह से भरपूर है। और हमें भी
चौकस होकर इस पथ पर चलना चाहिए···
प्रार्थना करते हुए कि वह सर्वकृपालु प्रभु
अपने मज़बूत हाथों से हमारे कदम सँभाल ले···
यदि हम लड़खड़ा जायें।
वह हमें एक पिता की छवि दिखाये,
किसी कठोर और भयानक नियंता की छवि नहीं।'

4

देशभक्ति के कवि

'एक नीरवता के भीतर विवाद के बिल्कुल ख़त्म हो जाने के बहुत बाद, इस शोरगुल व अशांति के बंद हो जाने के बहुत बाद, उनके चले जाने और महाप्रयाण के बहुत बाद उन्हें देशभक्ति का कवि, राष्ट्रवाद का पैग़ंबर और मानवता का प्रेमी माना जायेगा। उनके चले जाने और महाप्रयाण के बहुत बाद, उनकी वाग्मिता की ध्वनि-प्रतिध्वनि केवल भारत में ही नहीं, सुदूर प्रदेशों और समुद्रों के पार भी गुंजायमान होगी।'

—चित्तरंजन दास

श्री सी० आर० दास, जो बाद में देशबन्धु चित्तरंजन के नाम से प्रसिद्ध हुए और अलीपुर षडयंत्र से संबंधित मामले की सुनवाई के दौरान श्रीअरविंद के पक्ष में अपना समापन तर्क प्रस्तुत करते हुए देशभक्ति के कवि के रूप में श्रीअरविंद का वर्णन किया। पत्नी के नाम लिखे गये एक निजी पत्र के उद्धरणों की सहायता से श्रीअरविंद के निजी जीवन की झलक पाकर इस महत्वपूर्ण कथन की सच्चाई ज्ञात की जा सकती है। यह पत्र अलीपुर मामले की सुनवाई के दौरान और बाद में, एक सार्वजनिक तथा ऐतिहासिक दस्तावेज़ बन गया था और संपूर्ण भारतवर्ष में इस पत्र की असंख्य प्रतियाँ वितरित हुई थीं।

श्रीअरविंद का विवाह 1901 में कलकत्ता में भूपालचन्द्र बोस की पुत्री मृणालिनी देवी के साथ हुआ था। परिचितों के कथनानुसार सौम्य और रूपवती मृणालिनी देवी विशिष्ट, शालीन एवं सहनशीलता की प्रतिमा थीं। बड़ौदा में कुछ दिनों और कलकत्ता में उससे भी कम दिनों के अलावा उन्हें पति के साथ-साथ रहने का अवसर नहीं मिला। एक दिन प्रातःकाल तथाकथित अलीपुर मामले के संबंध में जब पुलिस श्रीअरविंद को पकड़ ले गयी तो वे इस कारण से यह चोट बर्दास्त कर गईं कि उन्हें श्रीअरविंद के आदर्शों और कर्तव्यों की महानता में अटूट विश्वास था। आठ वर्ष बाद जब श्रीअरविंद कार्यनिवृत्त होकर पांडि-

चेरी आ गये तब जाकर मृणालिनी देवी को वहां उनके साथ रहने का अवसर मिला। परंतु वे वहां जा नहीं पायीं और इन्फ्लुएंजा से 1918 में वह चल बसीं।

निम्नलिखित उद्धरण उन्हें बड़ौदा से लिखे गए श्रीअरविंद के 30 अगस्त, 1905 के पत्र से लिया गया है :

'तुम्हें शायद अब तक पता चल चुका होगा कि जिस व्यक्ति के भाग्य के साथ तुम्हारा भाग्य जुड़ा हुआ है, वह अत्यंत विचित्र किस्म का व्यक्ति है। मेरा मानसिक दृष्टिकोण, जीवन का उद्देश्य और कार्यक्षेत्र वैसा नहीं है, जैसा फ़िलहाल इस देश में आम लोगों का है। वह हर तरह से बिल्कुल भिन्न, असाधारण है। शायद तुम जानती होगी कि आम लोग असाधारण विचारों, असाधारण कार्यों और असाधारण उच्चाकांक्षाओं को किस नाम से जानते हैं। वे इन सब चीजों को पागलपन जैसा मानते हैं, परन्तु यदि पागल आदमी कार्य क्षेत्र में सफल हो जाता है, तब उसे पागल न कहकर महान और प्रतिभाशाली कहा जाता है। परंतु कितने लोग अपने प्रयासों में सफल होते हैं। हजार लोगों में दस असाधारण होते हैं और इन दसों में कोई एक व्यक्ति सफल हो पाता है। मेरे कार्यक्षेत्र में सफलता संभावना से परे की चीज़ है। मैं पूरी तरह इस क्षेत्र में जा भी नहीं पाया हूँ, अतः लोग मुझे पागल समझेंगे और एक पागल से विवाह होना किसी नारी का दुर्भाग्य ही है, क्योंकि नारी की सभी आशाएँ परिवार के सुख-दुःख में सीमित हो जाती हैं। एक पागल अपनी पत्नी के जीवन में सुख नहीं ला सकता, वह केवल दुःख का सृजन करेगा···।'

'मेरे अन्दर तीन तरह के पागलपन हैं। प्रथम, मेरा यह अटल विश्वास है कि ईश्वर ने मुझे जो कुछ गुण, प्रतिभा, उच्च शिक्षा, ज्ञान और धन दिया है, वह सब उसी का है। मुझे उतना ही खर्च करने का अधिकार है, जितना मेरे परिवार के भरण-पोषण और अन्य अत्यावश्यक कार्य के लिए ज़रूरी है। जो बच जाये उसे ईश्वर को लौटा दिया जाना चाहिए। यदि मैं वह सब अपने ऊपर, व्यक्तिगत स्वार्थ और सुख के लिए खर्च कर दूं तो मैं चोर साबित होऊँगा। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार जो व्यक्ति भगवान से धन ग्रहण करता है और उसे लौटाता नहीं, वह चोर है। अबतक मैं अपने धन का एक छोटा भाग ईश्वर की सेवा में देता रहा हूँ और दस के नौ हिस्से व्यक्तिगत सुख पर खर्च करता रहा हूँ। मैंने इसी प्रकार अपना हिसाब चुकता किया है और सांसारिक सुखों में डूबा रहा हूँ। आधा जीवन नष्ट हो चुका है। जानवर भी स्वयं और अपने परिवार का भरण-पोषण करके संतुष्ट रहता है।

'जो धन मैंने सरोजनी या ऊषा को दिया है, उसके लिए मुझे

क़तई अफ़सोस नहीं, क्योंकि दूसरों की सहायता करना धर्म है। अपने पर जो आश्रित हैं, उनकी रक्षा करना एक महान धर्म है। परंतु हिसाब तब तक चुकता नहीं होता, जब तक कोई अपने ही भाई-बहनों को देता रहता है। कठिनाई के इन दिनों में संपूर्ण देश हमारे द्वार पर आश्रित की भाँति है, इस देश में 30 करोड़ भाई-बहन हैं, उनमें से बहुत भूखों मरते हैं, अधिकांश लोग दु:खों-तकलीफ़ों से कमज़ोर हो गये हैं और किसी तरह अपना अस्तित्व जुगाये हुए हैं। उनकी अवश्य सहायता की जानी चाहिए। तुम क्या सोचती हो? क्या मेरे साथ इस धर्म में हाथ बँटाकर मेरी पत्नी बनी रहोगी? हम आम लोगों की तरह खायेंगे-पहनेंगे, आवश्यक चीज़ों की ही खरीद करेंगे और शेष धन दैवी शक्ति के हाथों सौंप देंगे। मैं तो ऐसा ही करूँगा। यदि तुम इस विचार से सहमत हो और त्याग का सिद्धांत स्वीकार करो तो मेरा उद्देश्य सफल हो सकेगा। तुम्हारी यह शिकायत थी कि तुम्हारे कार्य में कोई प्रगति नहीं हो रही है। मैंने जिस ओर संकेत किया है, वही प्रगति का रास्ता है। क्या तुम यह रास्ता अपनाओगी?

'दूसरे पागलपन ने हाल ही में मेरे ऊपर अधिकार जमाया है। वह ऐसा है कि जैसे भी हो, मुझे प्रभु का साक्षात्कार हो जाये। आज का धर्म प्रतिक्षण प्रभु का नाम रटने, प्रत्येक व्यक्ति के सामने प्रार्थना करने और अपनी धार्मिकता लोगों को दिखाने जैसी चीज़ों से संबंधित है, जिन्हें मैं पसन्द नहीं करता। यदि ईश्वर है तो उसके अस्तित्व को अनुभव करने का, उसका साक्षात् दर्शन प्राप्त करने का कोई पथ भी वहाँ ज़रूर होगा। यह पथ कितना भी कठोर हो, उस पर चलने के लिए मैं दृढ़प्रतिज्ञ हूँ। हिन्दू धर्म की मान्यता है कि व्यक्ति की आत्मा और उसके मन में ही वह पथ मौज़ूद है। जो नियम उस रास्ते पर चलने के लिए हमें योग्य बनाता है, वह मुझे प्राप्त है। ऐसे सभी नियमों को परखना मैंने शुरू कर दिया है और एक महीने के भीतर ही मैं यह पहचानने लगा हूँ कि हिंदू धर्म की मान्यताएँ झूठी नहीं हैं। इसने जितने भी संकेत दिए हैं, उनका मुझे अनुभव करना पड़ा है। मैं तुम्हें भी उस रास्ते पर ले चलना चाहूँगा। तुम मेरे साथ चल सकने में सक्षम नहीं होगी, क्योंकि तुम्हें वैसा ज्ञान नहीं मिला है। परंतु तुम मेरा अनुसरण करो तो इसमें कोई बाधा नहीं है। कोई व्यक्ति उस रास्ते का अनुसरण करके पूर्णता प्राप्त कर सकता है। परंतु उस रास्ते में प्रवेश करना व्यक्ति अपने चुनाव पर निर्भर करता है। कोई भी तुम्हें उसमें प्रवेश के लिए बाध्य नहीं कर सकता। यदि तुम्हारी रुचि हो, तो मैं इस संदर्भ में और विस्तार से लिखूँगा।

'तीसरा पागलपन यह है कि जहाँ दूसरे लोग देश को एक जड़

वस्तु, कुछ मैदान, जंगल, पहाड़ और नदी मात्र समझते हैं, वहाँ मैं अपने देश को अपनी माता मानता हूँ। मैं उसकी पूजा करता हूँ और माँ की तरह उसकी भक्ति करता हूँ। जब कोई राक्षस माँ की छाती पर बैठ कर उसका खून चूस रहा हो तो उस समय उसका पुत्र क्या करेगा .? क्या वह चुपचाप अपने खान-पान में लगा रहेगा और पत्नी बच्चों के साथ मौज़ मनाता रहेगा या इसके बदले माँ को बचाने के लिए दौड़ पड़ेगा .? मैं जानता हूँ कि इस पतित जाति को उठा सकने की सामर्थ्य मुझमें है। यह कोई शारीरिक सामर्थ्य नहीं और मैं तलवार या बंदूक़ लेकर भी नहीं लड़ने जा रहा, यह तो ज्ञान की शक्ति है। क्षात्र तेज ही शक्ति का एकमात्र तेज नहीं है, ब्रह्म तेज भी है, वह तेज ज्ञान के ऊपर प्रतिष्ठित है। यह मेरे अन्दर कोई नई अनुभूति नहीं और न यह ज्ञान हाल में पैदा हुआ है। मैं तो इसके साथ ही पैदा हुआ था; यह मेरी मज्जा में निहित है। ईश्वर ने यह महान कार्य संपन्न करने के लिए मुझे पृथ्वी पर भेजा है। चौदह वर्ष की अवस्था में यह बीज उगना शुरू हो गया था और अठारह वर्ष की अवस्था तक वह दृढ़ता से जड़ें जमाकर अटल हो गया।'

यह वह समय था, जब लॉर्ड कर्ज़न द्वारा किए गए बंग-भंग ने भारत जागृति की भावनाओं को प्रज्ज्वलित कर दिया। लंदन स्थित **'द टाइम्स'** पत्र के संवाददाता वेलेन्टाइन चिरोल ने लिखा है कि 'भारत में ऐसा लोकप्रिय प्रदर्शन कभी नहीं हुआ।'

उस समय तक संपूर्ण देश में श्रीअरविंद की प्रेरणा से गुप्त संगठनों का जाल बिछ चुका था और दसियों हज़ार युवक उनके सदस्य बन चुके थे। आनेवाली पीढ़ी को इन संगठनों और उनके क्रियाकलापों के बारे में कुछ पता लगने का अवसर बहुत कम था क्योंकि अत्यंत गोपनीय ढंग से इनका संचालन होता था।

श्रीअरविंद ऐसा नहीं सोचते थे कि गुप्त संगठनों के क्रिया-कलापों में ही बहुत कुछ किया जा सकता है, ये तभी प्रभावशाली हो सकते हैं, जब जनता को जाग्रत करने के गहन प्रयास हो रहे हों। बड़ौदा राजकीय सेवा में अब भी होने की वजह से वह सार्वजनिक रूप से किसी राजनीतिक आंदोलन में भाग नहीं ले सकते थे। परंतु उन्हें सक्रिय करने के लिए बंग-भंग प्रच्छन्न रूप से एक ऐसा बहुमूल्य वरदान सिद्ध हुआ, जिसे हाथ से जाने नहीं दिया जा सकता था।

श्रीअरविंद ने **'भवानी मंदिर'** नाम से एक व्यावहारिक और प्रतीकात्मक योजना का मसौदा बनाया। उनके प्रधान सहयोगी थे, छोटे भाई बारीन्द्र कुमार, जिनकी सिफ़ारिश पर बड़ौदा सेना में भर्ती हुए जतिन बनर्जी। बैरिस्टर पी० मित्र और अन्य लोगों ने उस योजना को सफल बनाने में सहायता करने के

लिए अपील की प्रतियाँ, जिन पर किसी का हस्ताक्षर नहीं था, वितरित कीं।

इस अपील की शुरूआत विचित्र ढंग से हुई और इसमें एक रहस्यमय आकर्षण था :—'पहाड़ियों के बीच माँ भवानी के लिए एक मंदिर की स्थापना करनी है। माँ के सभी पुत्रों का इस अपील के जरिये आह्वान किया जा रहा है कि वे इस पवित्र कार्य में सहायता करें।

परंतु अपील में शक्ति जुटाने की आवश्यकता पर अधिक जोर दिया गया था :

> विश्व की अविरत क्रांतियों में चूँकि शाश्वतता का पहिया पूरी शक्ति से अपनी प्रक्रिया में घूमता रहता है, अतः शाश्वतता से प्रस्रवित होने वाली और उस पहिए को सक्रिय बनाने वाली असीम कर्मशक्ति अपने भिन्न पक्षों और अपरिमित रूपों में मनुष्य की दृष्टि में प्रकट होती है। हर पक्ष एक युग की रचना करता है। कभी तो वह प्रेम और कमी वह दया हो जाता है। यह कर्मशक्ति भवानी हैं। वह दुर्गा, काली, राधा, लक्ष्मी, हमारी माँ और हम सबका सृजन करने वाली हैं।
>
> वर्तमान काल में माँ का अवतरण शक्ति की माता के रूप में हुआ है। वह शुद्ध शक्ति है।
>
> 'संपूर्ण विश्व शक्ति के रूप में माँ से विकसित हो रहा है।'
>
> हम अपनी आँखें उठाएं और उन्हें अपने चतुर्दिक विश्व पर टिका दें ताकि हम जिधर भी दृष्टि डालते है हमारी आँखों के सामने प्रेरणाओं का आता है—अपरिमित शौर्य, भीषण तीव्र और अजेय शक्तियाँ, ऊर्जा की विशाल, भयंकर, अदम्य आकृतियाँ व शक्ति के स्तम्भ। सभी कुछ विशाल और सब लहो रहा है। युद्ध की शक्ति, धन की शक्ति और विज्ञान की शक्ति दस गुनी अधिक शक्तिशाली और भीमकाय, सौ गुनी अधिक भयंकर, तीव्र और अपनी सक्रियता में व्यस्त तथा संसाधनों, आयुधों और उपकरणों के मामले में हज़ार गुनी अधिक उर्वरता से भरपूर है जैसा कि इतिहास में इससे पहलेकभी नहीं हुआ। माँ सर्वत्र सक्रिय हैं, उनके शक्तिशाली और रचनात्मक हाथों से पैदा होकर राक्षसों, असुरों, देवताओं के असंख्य रूप विश्व के रंग-स्थल में आगे आ रहे हैं। हमने पश्चिम में महान साम्राज्यों का धीमा परन्तु सबल उत्थान देखा है, हमने जापान देश के जीवन में अप्रतिरोध्य, त्वरित और अदम्य उत्साह देखा है। इनमें कुछ अपनी शक्ति से प्रच्छन्नम्लेच्छ शक्तियाँ है, तमस् और रजस से काली और रक्तवर्ण, अन्य आर्य शक्तियँ हैं—त्याग और सम्पूर्ण आत्मोत्सर्ग से स्नान। परन्तु ये सभी अपने नए रूप में माँ ही हैं—पुनर्गठन और नव निर्माण करती हुई।

पुरातन में अपनी आत्मा ढाल रही हैं जीवन में नवीनता का संचार-कर रहा है।'

'भारत में हम शक्ति के अभाव में हर कार्य में विफल रहते हैं।'

'परंतु भारत में श्वास की गति धीमी है, उत्प्रेरणा की गति शिथिल है। पुरातन माँ अर्थात् भारत, वास्तव में व्यथा और आँसुओं के साथ पुनर्जन्म के लिए छटपटा रही है। परंतु उसकी छटपटाहट व्यर्थ है। क्या है, जो उसे कष्ट दे रहा है; वह, जो अंततः इतनी विशाल है, वह शक्तिशाली भी हो सकती है ? अवश्य ही यहाँ भी कुछ गंभीर खामियाँ हैं, हमारे अंदर जीवंतता का कुछ अभाव है, और दोष की जगह उंगली रख पाना कठिन नहीं है। हमारे पास अन्य सभी चीजें हैं परंतु शक्ति और ऊर्जा का अभाव है। हमने 'शक्ति' का परित्याग कर दिया है और इसलिए शक्ति द्वारा हम भी परित्यक्त हैं। माँ हमारे दिमाग़, हमारी बाँहों में हैं, हमारे दिलों में वे मौजूद नहीं हैं।

हमारे पास ज्ञान था; परंतु शक्ति के अभाव में यह एक मृत वस्तु थी। हमारे पास भक्ति थी, परंतु सच्ची भक्ति तो शक्ति की उद्दीप्त लौ थी, ईंधन थी। यदि ईंधन कम है तो अग्नि कितनी देर प्रज्ज्वलित रह सकती है।

हममें से अधिकांश लोग काले और विकट दानव 'तमस्' से पराजित होकर आजकल कह रहे हैं कि यह असंभव है कि भारत का अपकर्ष हो गया है, वह रक्त और जीवन से हीन हो गया है, पुनः स्वास्थ्य लाभ कर पाने में वह अक्षम है और हमारी जाति का उन्मूलन हो गया है। यह कथन निरर्थक और मूर्खतापूर्ण है। कोई व्यक्ति या राष्ट्र कमजोर नहीं हो सकता जबतक कि इसका चुनाव ही न करे। कोई व्यक्ति या राष्ट्र नष्ट नहीं हो सकता जबतक कि वह जान बूझकर समाप्त होने की इच्छा ही न करे।' परन्तु राष्ट्र क्या है ? वह अपने लाखों लोगों की शक्ति हैं। यह हमारे सोचने की चीज़ है कि हम अपने राष्ट्र का पुनर्सर्जन करें या उसे नष्ट करें। इसके बाद वह अपील एक उपदेश बन गयी, जो अत्यन्त भावाभिभूत थी।

'राष्ट्र क्या है ? हमारी मातृभूमि क्या है ? यह पृथ्वी का कोई खंड नहीं है, न ही भाषण की कला और न ही मस्तिष्क की कल्पना। यह एक महती शक्ति है।

तब आइए, माँ के आवाहन को ध्यानपूर्वक सुनें। वह हमारे हृदयों में बैठी हुई स्वयं को अभिव्यक्त करने की और अपनी पूजा की प्रतीक्षा कर रहीं हैं, वे इसलिए निष्क्रिय हैं कि हमारे भीतर का स्वामी हमारे तमस् से छिपा हुआ हैं; वे अपनी निष्क्रियता के कारण परेशान हैं, वे दुःखी हैं, क्योंकि उनके पुत्र सहायता के लिए उनको पुकार नहीं लगाते। आप यदि

माँ की प्रेरणा अनुभूत करें तो अपनी आत्मा के ऊपर से गहरा पर्दा उठा फेंकें, अकर्मण्यता की चार-दीवारी तोड़ दें, प्रत्येक अपने शरीर, बुद्धि, वाचा, अपने धन, अपनी प्रार्थना, पूजा तथा अपनी क्षमता के अनुसार जितनी प्रेरणा महसूस करे, उससे उनकी सहायता करें। आप पीछे न मुड़ें, क्योंकि जिनका आह्वान किया गया है उन्होंने यदि उसे सुना नहीं है तो अपने अवतरण के समय माँ उन पर नाराज हो सकती है, परंतु जिन्होंने माँ के आगमन पर सहायता की है, उनके प्रति माँ का चेहरा सौंदर्य और दया से भरकर कांतिमान हो उठेगा।'

इस प्रकार वे भारत को माँ के रूप में हमारे हृदयों में प्रतिष्ठित कर रहे थे। आगे आने वाले दिनों में बंदे मातरम् की ध्वनि भारत में ब्रितानी हुकूमत की नींव हिला देनेवाली थी। भवानी मंदिर का उद्देश्य जनता को यह स्मरण दिलाना था कि हमारी मातृभूमि अपने पुत्रों की आश्चर्यजनक जड़ता के बोझ से हाँफ रही है और आहें भर रहीं है। परंतु इसका मतलब यह नहीं कि प्राचीन-काल जैसी ज्योतिर्मय आत्माएँ इस पवित्र भूमि में पैदा ही नहीं हुई हैं। उनका अस्तित्व हमेशा था, भले ही देश उनसे लाभ उठा पाने की स्थिति में रहा हो या नहीं। बंकिम चंद्र ऐसी ही एक महान आत्मा थे। श्रीअरविंद ने 'इंदु प्रकाश' (बड़ौदा) पत्रिका में उनके बारे में लेख लिखा था (उन्होंने उन पर एक कविता भी लिखी थी)। वह लेख 'बंदे मातरम्, (1907) में पुन: प्रकाशित हुआ—

"बहुत से लोग हैं, जो इस प्राचीन और महान राष्ट्र के विगत गौरव को लेकर रोते-धोते हुए ऐसी बातें करते हैं। मानो हमारी सभ्यता और विचारों के प्रेरणा-दायक सर्जक प्राचीनऋषिगण हमारे उस वीरतापूर्ण युग के एक चमत्कार थे, और उनका नाम वर्तमान कष्टपूर्ण स्थितियों तथा अल्प-विकसित लोगों के बीच नहीं लिया जाना चाहिए। ऐसा कहना हमारी भूल है, तिगुनी भूल। हमारी जनता, धर्म और भूमि शाश्वत है, इसकी शक्ति, महानता तथा पवित्रता पर बदली छा सकती है लेकिन एक क्षण के लिए भी वह कभी पूरी तरह समाप्त नहीं हो सकती। शूरवीर, ऋषि तथा संत हमारी भारतीय भूमि के प्राकृतिक फल हैं। ऐसा कोई युग कभी नहीं रहा, जब ऐसे लोगों का अस्तित्व न रहा हो। परवर्ती काल के ऋषियों में अंततः हमने यह महसूस किया है कि हमें इनके बीच उस व्यक्ति का नाम अवश्य शामिल करना चाहिए, जिसने हमें पुनर्जीवन का मंत्र दिया। यह मंत्र 'बंदे मातरम' है और यह नये भारतवर्ष का निर्माण कर रहा है।"

कलकत्ता आने के तुरंत बाद श्रीअरविंद ने एक अन्य महान व्यक्ति बाजी प्रभु पर कविता लिखी, जिन्होंने एक बार शिवाजी की पराजय रोकने के लिए थोड़े से लोगों को ही लेकर शत्रु के बारह हज़ार सैनिकों के विरुद्ध एक पहाड़ी

दर्रे पर दो घंटे तक अधिकार जमाए रखा था। उन्होंने बाजी प्रभु का चित्रण इस रूप में किया मानो वह महान वीर बादलों की ओट से नीचे देख रहा है और देश-वासियों से कह रहा है :

'लौहवत बनाओ अपनी आत्माओं को !
भवानी ने यदि चाहा,
तो पराजय के विरुद्ध शक्ति और तलवार
हमारे राष्ट्र के भविष्य को रच सकते हैं।'

मुक्त छन्द में इस लम्बी कविता का प्रारंभ एक ऐसे प्रदेश और समय के वर्णन से होता है, जिससे स्वयं कथा की पृष्ठभूमि तैयार हुई है :—

'दक्षिण में एक दोपहर—
चिलचिलाती पीड़क धूप से पृथ्वी परेशान थी,
पहाड़ियों पर गहरी धुंध छाई थी
धूप से परेशान प्यासे खेत ऊपर ताक रहे थे,
पानी के लिए तरसती नदियाँ बहुत पहले सूख चुकी थीं।'

परंतु क्या बाजी प्रभु का गौरवपूर्ण त्याग इस 'बंजर भूमि' की स्थिति में एक अच्छी बरसात भर से एक अधिक वस्तु नहीं थी ? भारत का वृहत्तर परिदृश्य भी एक दूसरे ही तरह की पीड़ादायक चिलचिलाती धूप से परेशान था। क्या उसे बाजी प्रभु जैसे व्यक्तियों की जाति के अचानक प्रादुर्भाव की कल्पना नहीं करनी चाहिए ?

अपनी 'विपुला' में श्रीअरविंद ने महाभारत की कथा को एक नया रूप दिया, जो 'द मदर टु हर सन' शीर्षक से पहली बार प्रकाशित हुआ था।

राजकुमार संजय शत्रु राजा द्वारा राजगद्दी से हटा दिए जाने के बाद इतना निराश और हतोत्साहित है कि वह राज्य को पुनः प्राप्त कर लेने का या मृत्यु-पर्यन्त लड़ते रहने का धर्म भूल जाने के लिए तैयार हो गया है। अब वह भाग्य के भरोसे एक साधारण आदमी का जीवन जीने के पक्ष में है परंतु अपनी माँ के के कारण वह भाग्यशाली रहा, जो आत्मा की एक लौ थी।

'पुत्र'—उसने चीत्कार किया—
मेरा ऐसा कोई पुत्र नहीं, जो तेरी माँ का दिल हुलसा सके,
ध्यान से सुन, तेरे बैरी हँस रहे हैं और क़ामयाब हो रहे हैं,
अब भी जीवित रहना तेरी ही इच्छा पर निर्भर है।
न तो तेरे पिता ने तुझे पाया
न मैंने ही अपनी कोख में तुझे धारण किया,
क्षुद्र आत्माओं के समूह से,
कायरता की निराशा से बदला हुआ यह बच्चा,
यूँ ही भय से विषण्ण है।

तू, संघर्ष के लिए तत्पर, अपना श्रम कर,
महत प्रयास में डगमगा नहीं—
बस इस प्रकार ही मानव अपने प्रभु के समक्ष मुक्त हो सकता है,
आत्म अवमानना से बच सकता है—
संजय, ओ संजय ! मत कर नष्ट धुएँ में,
अपनी प्रचंड और दारुण लपटों को
भूखे शेर की तरह अपने बैरियों पर टूट पड़,
धावा बोलते हुए अपने पराजित विजेताओं पर,
जब तक कि मृतकों के ढेर पर तू गिर न पड़े।

आदर्श कर्म से मुँह न मोड़,
अनुपयुक्त कर्म के समक्ष न झुक।
झुकनेवाले भ्रष्ट होते हैं।
वे न तो इस पृथ्वी पर सफल होते हैं—
न ही स्वर्ग का द्वार उन्हें मिल पाता है।
जब तू भयानक कष्टों की जकड़ से वह दुर्दम विजय हासिल कर लेगा,
तभी मैं समझूँगी, तू मेरा बच्चा है,
सचमुच तब अपनी सन्तति को प्यार करूँगी।'

क्या संजय सदृश पुत्रों के लिए भारत माता का भी ऐसा ही आह्वान नहीं है ?

'भवानी मंदिर' में श्रीअरविंद उन स्थितियों को स्पष्ट करते हैं, जिसे पूरा करना लोगों के लिए अत्यावश्यक है ताकि 'माँ' देश में अपने को प्रकट कर सकें। 'विपुला' में वह वह ऐसी 'माँ' का रूप प्रस्तुत करते हैं, जिसकी आवाज़ वीर और आदर्श मातृत्व की प्रतीक-ध्वनि कही जा सकती है अर्थात् वही कहती है जो माँ अपने बच्चों से अपेक्षा रखती है। 'दुर्गा स्तोत्र' में उन्होंने उस मंत्र का उल्लेख किया है, जिससे पुत्र माँ की दया पाने के लिए प्रार्थना कर सके। आकांक्षा की भावना से गुंजायमान यह स्तोत्र माँ की रक्षा का अवश्यम्भावी पथ प्रदर्शित करता है क्योंकि यह पूर्ण समर्पण का भी एक गीत है :

'माँ दुर्गे ! सिंह पर आरूढ़, हाथ में त्रिशूल, आयुधों से सुसज्जित सौंदर्य की प्रतिमूर्ति, विजय दिलानेवाली माँ, भारत तुम्हारी प्रतीक्षा में है, वह तुम्हारा कृपालु रूप देखने के लिए उत्सुक है। ओ माँ, सुनो, पृथ्वी पर अवतरण करो, इस भारत भूमि में स्वयं को प्रकट करो।

माँ दुर्गे ! तुम शक्ति, प्रेम और ज्ञान प्रदान करनेवाली हो, तुम्हारी स्वयं की शक्ति में आश्चर्यजनक कौशल है, माँ ! तुम सुन्दर और शक्तिवान हो। जीवन युद्ध—भारत के युद्ध में, हम तुम्हारे नियुक्त सैनिक हैं। माँ ! हमारे दिलो-दिमाग में सूर्य की शक्ति और ऊर्जा भर दो, हमारी बुद्धि और आत्मा को देवता का चरित्र और ज्ञान प्रदान करो।'

5

राष्ट्रवाद के अग्रदूत

अरविंद की प्रतिभा एक उल्का की तरह अचानक विकसित हुई। वे कुछ समय के लिए ही उच्च आकाशों में अवस्थित रहे। उन्होंने 'केप' से 'माउंट' तक के परिवेश को अपने प्रकाश की दीप्ति से भर दिया।

—डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या,

'द हिस्ट्री आफ़ इण्डियन नेशनल कांग्रेस'

कलकत्ता में 9 नवंबर, 1905 को 'पांतिर मठ' पर एक विशाल रैली आयोजित हुई। प्रेरणा से भरपूर देशभक्त और धनी-मानी सुबोध मल्लिक ने वहाँ घोषणा की कि मैंने भारत में ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण से मुक्त एक नशनल कालेज की स्थापना के लिए अपने एक लाख रुपये अलग रख छोड़े हैं।'

समूची भीड़ ने एक आवाज़ में श्री मल्लिक का 'राजा' कहकर स्वागत किया। यह उपाधि सुबोध मल्लिक के नाम के साथ स्थायी उपसर्ग के रूप में जुड़ गई। यह अपने ढंग की एक मात्र घटना थी।

सुबोध मल्लिक ने एक बहुत ही सराहनीय शर्त यह रखी थी कि उन दिनों बड़ौदा की राजकीय सेवा से संबद्ध श्रीअरविंद मे अनुरोध किया जाये कि वे कलकत्ता आकर प्रस्तावित संस्था की रूपरेखा तैयार करें।

इस औपचारिक अनुरोध को श्रीअरविंद ने स्वीकार कर लिया। उन्होंने बड़ौदा कालेज के उपप्रधानाचार्य के पद का त्याग दिया और 1906 में राजनीति के खुले रंगमंच कलकत्ता आ गए।

उसी वर्ष प्रसिद्ध देशभक्त बिपिनचंद्र पाल ने **'वंदेमातरम'** पत्र के संचालन में मदद करने के लिए उन्हें आमंत्रित किया और श्रीअरविंद ने उनकी मदद की। यह पत्र शीघ्र ही भारतीय क्रांति का अग्रदूत बन गया। **'स्टेट्समैन'** के तत्कालीन संपादक श्री रैटक्लिफ्फ के शब्दों में, "बुद्धिमत्तापूर्ण तथा मर्मबेधी अंग्रेज़ी में लिखे गए ऐसे अग्रलेख तथा विशिष्ट लेख भारतीय पत्रकारिता में

इससे पहले सामने नहीं आए थे। उस समय इसका सर्वाधिक प्रभावशाली स्वर राष्ट्रवादी उग्रवाद था।'

श्रीअरविन्द ने 1906 के अगस्त महीने में कलकत्ता नेशनल कालेज के प्रधानाचार्य का कार्यभार सँभाला। परन्तु 'बन्दे मातरम्' और उदीयमान नेशनलिस्ट पार्टी को उनकी इतनी अधिक ज़रूरत थी कि उनके लिए शिक्षा क्षेत्र में ज़्यादा दिन तक रहना असंभव-सा हो गया। उन्होंने शीघ्र ही पद-त्याग कर दिया।

प्रायः आयोजित होनेवाली विशाल जनसभाओं तथा 'बंदे मातरम्' के पृष्ठों के द्वारा श्री अरविंद ने ब्रिटिश हुकूमत का बने रहना असम्भव कर देने के लिए एक ठोस योजना प्रस्तुत की। मोटे तौर पर यदि कहें तो इस योजना में विदेशी उद्योगों और राष्ट्रीय शिक्षा का विकास, सभी राजकीय संस्थाओं से असहकार और उनका पूरी तरह बहिष्कार, और जीवन्त स्वयंसेवकों की एक सेना का गठन शामिल थीं। आगे आनेवाले चार दशकों में आज़ादी के लिए राष्ट्रीय संघर्ष का इतिहास यह स्पष्ट करता है कि उद्देश्य पूरा होने तक ये चीज़ें संघर्ष की पृष्ठभूमि में आधारभूत विचार का काम कर रही थीं—उनका रूप कैसा भी क्यों न रहा हो! श्रीअरविन्द द्वारा देश को माँ के रूप में देखने पर बल देने का तथा बेलाग रूप से यह घोषणा करने का कि भारतीय राष्ट्रीय जागरण का उद्देश्य पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना है, युवा भारत के मन पर बड़ा रोमांचक प्रभाव पड़ा।

श्रीअरविन्द की पत्रकारिता ने केवल आज़ादी का ही आह्वान नहीं किया, बल्कि शैली और लेखन में अभिनव विषयों के द्वारा उन्होंने आज़ादी की नयी लहर भी पैदा की। यह आज़ादी विदेशी सरकार द्वारा निषेधाज्ञाओं व अन्ध-विश्वासों से फैलाये गये कुप्रचार तथा बढ़ा-चढ़ाकर पेश की गयी निर्बलता की छवि, जिससे देश आक्रान्त था, से मुक्त होने की थी।

निम्न अंशों में इसी तरह का एक उद्धरणहै, जो 14 जुलाई, 1907 के **'बंदे-मातरम'** में प्रकाशित लेख से लिया गया है:

'अपने उद्योगों और सामाजिक संस्थाओं का पूरी तरह पुनरुद्धार किए बिना लोकतांत्रिक पद्धति के आधार पर राजनीतिक विकास के लिए भारतीयों की तैयारी को असंभव मानना, आंग्ल-भारतीयों का यह फरीसियों जैसा ही पाखण्ड है और इससे अधिक हास्यापद विचार सोच पाना कठिन है। एक ज्ञानदंभी कहता है—''यूरोप के उन्नत देशों का अनुकरण करने की बात सोचने से पहले अपने देशवासियों को भोजन और कपड़ा दो।' दूसरा कहता है—'राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना का प्रयास करने से पहले अपने समाजका लोकतंत्रीकरण करो।' आंग्ल-भारतीयों का यह भ्रम-

पूर्ण तर्क, जिसमें पूर्वापर संबंध का पूरा अभाव है, खीजभरा मनोरंजन करते हुए यह मानता है कि लोकप्रिय सरकार वाले सभी देशों के पास धन और साथ ही, उनमें सामाजिक समानता भी हैं और क्या लोकतंत्र की अभीप्सा के पहले भारत में ये चीजें नहीं होनी चाहिए। इसका सबसे दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष यह है कि हमारे बहुत से देशवासी देश के सामाजिक, औद्योगिक और राजनीतिक विकास के अनुक्रम के अंधविश्वास से मोहग्रस्त हो गये हैं... भारत ग़रीबी से पंगु हो गया है, प्लेग से ग्रस्त है, अकाल की समस्या उसे दबोचे हुए है, भारत विवादजनक आस्थाओं और प्रतिद्वंद्वी जातियों की युद्धभूमि है; अपनी तुच्छ जातियों और आत्महनन करनेवाले अंधविश्वासों से अपने ही विरुद्ध विभाजित है—आदि कहते हुए वे लोग चिल्लाते हैं कि देश को इस असहनीय स्थिति के मृत स्तर से ऊपर उठाये बग़ैर राजनीतिक सुधार की बातें करना क्या अपधर्म नहीं है ?

'**बंदे मातरम**' के प्रांजल और शक्तिशाली गद्य को उन लोगों की भी प्रशंसा और श्लाघा मिली, जो इसके विरोधी थे। इस पत्र में विवेच्य विषय केवल राजनैतिक ही नहीं थे। इसके स्तम्भों में प्रबुद्ध व्याख्या से युक्त भारतीय संस्कृति और विरासत के विविध पक्षों पर भी विचार होता और श्रीअरविंद सामाजिक समस्याओं का प्रतिपादन ऐसी अंतर्दृष्टि से करते, जिससे हर मामले की जांच-पड़ताल उसकी जड़ तक हो जाती थी।

जाति प्रथा की बुराई से संबंधित एक पर्यवेक्षण '**बंदेमातरम्**' (29-9-1907) के निम्नलिखित अंशों में है।

'बंगाली' (पत्र) ने जाति प्रथा के बारे में श्रीयुत बालगंगाधर तिलक की एक सटीक उद्घोषणा का हवाला दिया है। दक्षिण भारतके इस राष्ट्र-वादी नेता का कथन है कि सामाजिक वैषम्य की वर्तमान धारणा गंभीर हानि पहुँचा रही है। ऐसी उद्घोषणा केवल श्रीयुत तिलक जैसे उत्साही हिन्दू और सच्चे राष्ट्रवादी के लिए ही स्वाभाविक है। मौलिक जाति व्यवस्था की भ्रष्ट विकृतियों के अधीन निम्नतर कोटि के विचार वह मानसिक दृष्टिकोण, जो जन्म के संयोग पर आधारित दैव प्रदत्त वरिष्ठता जाति, घमंड तथा दर्प की झूठी नींव पर उन्हें स्थित करता है और नियत व असहनीय असमानता के वे विचार...ये सब उस सर्वोच्च शिक्षा के, हिन्दू धर्म की मौलिक भावना के, जो प्रत्येक व्यक्ति में एक अपरिवर्ती और अभिन्न दिव्यता के दर्शन करती है, अनुरूप नहीं है।

साधारणतया राष्ट्रवाद राष्ट्र के भीतर ईश्वरीय एकता के पाने की भावविह्वल प्रेरणा है, यह एकता जिसमें अवयवों की तरह व्यक्ति समूह, वास्तविक और आधारभूत रूप में एक और समान होते हैं, भले ही

राजनीतिक, सामाजिक या आर्थिक पक्षों के संदर्भ में उनका कार्य भिन्न और स्पष्टतः असमान ही क्यों न हों ! जिस ढंग का राष्ट्रवाद भारत विश्व के समक्ष प्रस्तुत करेगा, उसमें मनुष्य-मनुष्य में, जाति-जाति में, तथा वर्ग-वर्ग में मूलभूत समानता होगी और जैसा कि श्री तिलक ने संकेत किया है, उसमें सारी सत्ता भिन्न भले हो परंतु वे सामंजस्यपूर्ण राष्ट्र के रूप में अनुभूत विराट पुरुष के अखंड और समान अंग होंगे। हमारे धर्म की महत्त्वपूर्ण शिक्षा तथा भारतीय राष्ट्रवाद का कार्य यह है कि वह प्रत्येक देशवासी तक अपने देश के धर्म और दर्शन का आदर्श पहुँचा दे। हम तानाशाही के विरुद्ध इसलिए हैं कि यह मौलिक समानता को राजनीति में नकारते हैं, हम जाति व्यवस्था के आधुनिक विरूपण पर आपत्ति करते हैं क्योंकि यह भी समाज में उस मौलिक समानता को अस्वीकृत करता है, जब हम राष्ट्र को राजनीतिक रूप से लोकतांत्रिक एकता में पुनर्गठित करने पर बल देते हैं तो हम स्वीकार करते हैं कि सामाजिक तौर पर भी पुनर्गठन का वही सिद्धांत निश्चित रूप से अक्षुण्ण रखना चाहिए। फिर भी, जैसा कि हमारे विरोधी सोचते हैं, यदि हम इस सिद्धांत की क्रिया-शीलता राजनीति तक ही सीमित रखने के इच्छुक हैं, तो हमारे प्रयास विफल हो जायेंगे, क्योंकि राजनीति में अनुभूत सिद्धांत को निश्चित तौर पर समाज में भी अक्षुण्ण रहना चाहिए। किसी तरह का जातीय या आनुवंशिक एकाधिकार एक राष्ट्रवादी के भविष्य की योजना या उसके उस दिन के स्वप्न का अंश नहीं बन सकता, जिसके आगमन के लिए वह संघर्ष और प्रयास कर रहा है।''

जसा कि स्पष्ट होगा, यहाँ सभी मुद्दों पर राष्ट्रवाद के वृहत्तर संदर्भ में विचार किया गया है। परंतु जहाँ तक राष्ट्रवाद का संबंध है, इसकी धारणा किसी भी स्वार्थ के साथ समझौता करने के प्रयास की पहुँच से परे रखी गई थी।

''सही ढंग की राष्ट्रीय एकता, देश के लिए आत्मत्याग की एकता है, जब कि हमारी मातृभूमि की स्वाधीनता और महानता ही हमारी विचारणा की सर्वोपरि वस्तु होती है। इसके समक्ष अन्य सभी चीजें गौण रहती हैं। फ़िलहाल भारत में तीन तरह के विरोधी आदर्श हैं, एक दल ब्रितानी प्रभुत्व को अन्य सभी विचारों से ऊपर रखता है, दूसरा दल इस प्रभुत्व को संशोधित रूप में स्वीकार करता है, तीसरा दल चाहता है कि भारत को यदि संभव हो, तो इंग्लैंड से संबद्ध रखकर स्वतंत्र और स्वायत्त राष्ट्र बनाया जाए, परंतु इंग्लैंड पर निर्भर रह कर नहीं। जब तक राष्ट्र का बहुमत इन विरोधी विचारों में से किसी एक को

स्वीकार नही करता तब तक एकता का दिखावा करना निरर्थक है। ऐसा करना पहले सभव था क्योंकि संशोधित ब्रिटिश प्रभुत्व का आदश एक सर्वप्रचलित आदर्श था परन्तु अब चूंकि राष्ट्रीय चेतना के भीतर नई आशाएँ और दृढ़ निश्चय प्रवेश कर रहे हैं, अतः इन्हें तब तक के लिए नष्ट कर दिया जाए जब तक कि पराधीनता में मौन स्वीकृति की झूठी एकता के स्थान पर पुनरुज्जीवित राष्ट्र की सच्ची एकता नही आ जाती।''

1907 में सरकार ने राजद्रोह की भावना फैलाने के आरोप में **'बंदे मातरम'** और इसके संपादक के रूप में श्रीअरविंद पर मुकदमा चलाया, जिससे समूचे देश में उत्तेजना फैल गई। उस समय रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने श्रीअरविंद पर अपनी प्रसिद्ध कविता लिखी : 'ओ अरविंद, रवीन्द्र तुम्हारा अभिनन्दन करता है।'

मुकदमे में यह प्रमाणित नहीं हो सका कि श्रीअरविंद ही उक्त पत्रिका के संपादक थे। उन्हें बरी कर दिया गया। सरकार उन्हें जेल में बंद करने के अन्य तरीकों की खोज कर रही थी, तभी सूरत-अधिवेशन हुआ जहाँ राष्ट्रवादियों तथा उदारतावादियों में नाटकीय ढंग से झड़पें हुईं और उदारतावादियों ने 'स्वदेशी' तथा 'बहिष्कार' आंदोलन को पूर्ण समर्थन देने के प्रस्तावों को पारित करने से इनकार कर दिया। अधिवेशन स्थगित कर दिया गया और राष्ट्रवादियों की अलग बैठक हुई।

उस समय भारत आए ब्रिटिश पत्रकार हेनरी नेविन्सन ने लिखा है :

'श्रीअरविंद ने चुपचाप गंभीर मुद्रा में बिना कुछ बोले अपना स्थान ग्रहण किया और सुदूर देखती आँखों से जैसे कोई भविष्य में देख रहा हो, अटल बठे रहे। श्री तिलक स्पष्टता के साथ छोटे-छोटे वाक्यों में बिना भावावेग या वाग्मिता प्रदर्शित किये तब तक भाषण करते रहे जब तक कि तारे न उग आए और किसी ने लालटेन जलाकर उनकी बग़ल में नहीं रख दी।

सूरत अधिवेशन ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय राजनीति एक नये क्षेत्र में प्रवेश कर रही है। विदेशी सत्ता से अनुनय विनय का तरीका तेजी से समाप्तप्राय हो रहा था। श्री तिलक और श्रीअरविंद के प्रति जो लोकप्रिय समर्थन विशेषकर भारतीय युवको का श्रीअरविद के प्रति महत्वपूर्ण होता जा रहा था उसके प्रति शीघ्र ही अलीपुर मामले की सुनवाई के दौरान अभियोग पक्ष के वकील श्री नॉर्टन ने बड़े अवसाद के साथ अभियोग लगाया। श्रीअरविन्द जहाँ भी गए, उन्हें एक राजा का सम्मान प्राप्त हुआ।

'बंदे मातरम' के माध्यम से स्वराज के आदर्श पर अब जो बल दिया जा रहा था, वह अत्यन्त साहसिक था—

''केवल एक चीज़ के बारे में हम विश्वस्त हैं, जिसे हम रक्षा कवच के

रूप मे पहनते हैं और जो इस देश में आ रही अव्यवस्था की लहरों से हमें बचा ले जाएगी। यह एक परम उद्देश्य में निश्चित और अटल विश्वास है, जो एक बार फिर से भारत को मृत अवस्था से ऊपर उठा रहा है, यह भारत के प्राचीन जीवन और गौरव के पुनरुद्धार के लिए संघर्ष करने का निश्चित और अटल उद्देश्य है। 'स्वराज' रक्षा कवच है, 'स्वराज' पथ-प्रदर्शक है, 'स्वराज' दिशा निर्देशक ध्रुव तारा है। महान सामाजिक क्रांति आवश्यक है, तो इसलिए स्वराज का आदर्श ऐसे राष्ट्र से निष्पादित नहीं हो सकता जो प्राचीन और अपरिवर्ती आत्मा को बिलकुल अभिव्यक्त नहीं करने वाले रूपों में आबद्ध हो। उसे अपने चिथड़ों को बदलना पड़ेगा ताकि उसके सौन्दर्य को पुनः अलंकृत किया जा सके। उसे अपना शारीरिक रूप बदलना पड़ेगा ताकि उसकी आत्मा को नयी अभिव्यक्ति मिल सके।"[1]

कुछ समय से राष्ट्रवादियों के विरुद्ध पुलिस के दमन ने एक क्रूर रवैया अपनाया था। 'बन्दे मातरम' का केवल नारा देना ही नृशंस लाठी चार्ज किए जाने के लिए काफी था। इसके परिणाम का पूर्वानुमान करके श्रीअरविन्द ने शासकों को बताया कि इस तरह राष्ट्रवादी उत्थान को दबा पाने का स्वप्न देखना कितनी बचकानी चीज़ है। परन्तु सरकार आतंक फैलाने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ थी और शीघ्र ही आतंकवाद के रूप में अपरिहार्य प्रतिरोध का दौर सामने आया।

राष्ट्रवाद के विरोधी अधिकारियों का खात्मा करने तथा गवर्नर की ट्रेन पटरी से उतारने जैसे छुटपुट प्रयासों का चरम उत्कर्ष संभवतः उस मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड की सवारी पर बम फेंकने के रूप में हुआ, जो स्वदेशी आन्दोलन के स्वयंसेवकों को अमानवीय सज़ा देने के लिए कुख्यात था। इन घटनाओं की विफल जाँचके दौरान पुलिस को कलकत्ता में मानिकतला बाग में क्रांतिकारियों के एक केन्द्र का पता चला। उनकी रिपोर्ट में बताया गया है कि वहाँ रहनेवाले सभी व्यक्ति सम्माननीय परिवारों से संबद्ध शिक्षित युवक थे।

एक दिन तड़के छापा मारने पर ये युवक अपने नेता बारिन के साथ घेर लिए गए और साथ-साथ श्रीअरविन्द भी अपने आवास पर गिरफ़्तार कर लिए गए।

इस मुक़दमे की सुनवाई एक वर्ष तक चलती रही, इसकी कहानी अलीपुर षडयंत्र से संबंधित मामले की तरह ही प्रसिद्ध है। सुनवाई के दौरान जज श्री बेचक्राफ्ट थे, जो कैम्ब्रिज में श्रीअरविन्द के सहपाठी रह चुके थे और प्रतिभा में अरविन्द के बाद उन्हीं का स्थान था।

---

1. 'बंदे मातरम' में पुनरुद्धृत सभी अंश श्रीअरविंद के लेखों से लिये गये हैं।

मुक़दमे के दौरान नाटकीय घटनाएँ हुईं। अभियोग की सुनवाई में दो सहायक अधिकारियों को गोली मार दी गई। जिस सरकारी गवाह के वक्तव्य से स्पष्टतः सुनवाई में मदद मिलती, उसकी दिन-दहाड़े जेल के अन्दर उन दोनों युवा क्रांतिकारियों ने हत्या कर दी, जो यह पूरी तरह जानते थे कि उन्हें फांसी दे दी जाएगी।

सुनवाई के दौरान उत्तेजना और शोर-गुल का वातावरण था परंतु श्रीअरविन्द सुदूर स्थित एक तारे की तरह निर्लिप्त रहे। जैसा कि डॉक्टर के० आर० श्रीनिवास ने बताया है, यह उनके लिए 'आश्रम वास' था। एक अकेली कोठरी में क़ैद होकर भी उन्हें आश्चर्यजनक आध्यात्मिक अनुभूतियाँ होती थीं।

रिहा होने के बाद उत्तरपाड़ा में दिये गये अपने भाषण में उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है :

> 'जिस जेल में मुझे अन्य लोगों से अलग कर दिया गया था, उसे मैं इस तरह देखा करता कि मैं इसकी ऊँची दीवारों में क़ैद नहीं था मुझे तो चारों तरफ़ से वासुदेव ने घेर रखा था। अपनी कोठरी के सामने पेड़ की डालियों के नीचे मैं चहलकदमी करता, परन्तु यह पेड़ नहीं था, मैं जानता था कि ये वासुदेव हैं, ये श्रीकृष्ण हैं, जिन्हें मैं वहाँ खड़े हुए और मुझे अपनी छाया से आबद्ध किए हुए देखता था······मैं देखता, और वह मजिस्ट्रेट नहीं था, यह तो वासुदेव थे, यह नारायण थे, जो वहाँ बेंच पर बैठे हुए थे। मैं अभियोग पक्ष के वकील की ओर देखता, यह अभियोग पक्ष का वकील नहीं था, यह श्रीकृष्ण थे, जो वहाँ बैठे थे, यह मेरे सखा और प्रेमी थे, जो वहाँ बैठ कर मुस्कुरा रहे थे।'

अतः क़ैदखाने में जिस श्रीकृष्ण ने कभी जन्म लिया था, उन्होंने क़ैदखाने में ही श्रीअरविन्द के सम्मुख अपने को प्रकट किया। श्रीअरविन्द ने 1939 में निम्नलिखित जो कविता लिखी थी, उसे अनुभूत भी अवश्य किया होगा।

> 'आखिर मैं जान गया, इस मधुर और कटु विश्व में
> आत्मा के जन्म की सार्थकता।
> मैं जिसने पृथ्वी के क्षुधित हृदय को महसूस किया
> अभिलाषा करते, स्वर्ग के उस पार कृष्ण के चरणों की।
> देखा है मैंने शाश्वत आँखों का सौन्दर्य
> और सुना है, प्रेम की बाँसुरी का आवेश।
> अनंत आनन्दातिरेक का आश्चर्य जाना है,
> और अन्तर के उस दुःख को जो सदा मौन रहता है।
> वह संगीत निकट से निकटतर आ रहा है,
> जीवन काँप रहा है एक विचित्र आनन्द से

समस्त प्रकृति एक विशाल और मुग्ध विराम है,
इस आशा में कि उसे मिलेगा।
अपने प्रियतम का स्पर्श, आलिंगन, और उनकी तदरूपता।
सारा अतीत जिया है---इस एक क्षण के लिए,
आखिर मेरे भीतर पूर्णकाम बना विश्व स्पन्दित हो रहा है।

परन्तु जेल में उन्होंने स्वतन्त्रता और उत्साह के लिए एक विशिष्ट ढंग की वेदना लिखी थी, जिसे पूरा का पूरा यहाँ उद्धृत करने का लोभ संवरण करना कठिन है :

आमंत्रण

पहाड़ और बीहड़, भूमि पर मैं चला जा रहा हूँ।
मेरे चारों ओर झंझा और मौसम के थपेड़े हैं,
कौन आएगा मेरे साथ ?
कौन चढ़ेगा मेरे साथ ?
कौन पार करेगा नदी ?
और चलेगा बर्फ पर ?
नगरों की संकीर्ण सीमा के भीतर
तुम्हारे दरवाज़ों व दीवारों में बन्द नहीं रहता।
मेरे ऊपर भगवान हैं नीलाभ,
आकाश में,
सामने हवा और झंझावात झकझोर रहे हैं मुझे।
यहाँ अपने इन क्षेत्रों में मैं एकान्त से खेलता हूँ।
दुर्भाग्य मेरा मित्र बना हुआ है।
कौन विशालता में जियेगा ?
कौन स्वतन्त्रता से जियेगा ?
यहाँ इस वात्यालोड़ित अधित्यका की चढ़ाई में।
मैं तूफ़ान और पहाड़ का अधिपति हूँ।
आज़ादी और अभिमान की मैं आत्मा हूँ।
उसको होना चाहिए दृढ़निश्चयी,
और खतरे को गले लगानेवाला,
जो मेरे राज्य का सहभागी हो और मेरे साथ चले।'

इस अवधि में लिखी गई एक दूसरी कविता 'कौन' (हूँ) है। अभिव्यक्ति की सरलता के साथ अनुभूति की गहराई का इतना सफल संयोग विरल ही प्राप्त होगा। ऐसी कविता पर कोई टिप्पणी करना अतिशयोक्ति नहीं होगी, बल्कि वह इस कविता के प्रभाव को भी नष्ट कर सकती है। हम इसकी कुछ पंक्तियों

को ही उद्धृत कर सकते हैं और इनसे आनन्द उठा सकते हैं :

गगन नीलिमा, कानन हरीतिमा में
किसके कर से रंजित रे यह आभा ?
आकाश-गर्भ में सोये पवनों को
जगा दिया है, किसने आवाहित कर
औ, जारी आदेश कर दिया अपना
भ्रमते रहने को अविराम बराबर।

लुप्त हो गया है वह हृदय देश में,
तथा खो गया है, वह प्रकृति-गुहा में,
और जो पा लिया गया है मानस में—
जहाँ से विचारों को रचता रहता,
और बुन गया है वह छद्मी नटवर
पुरुषों के रंग रूप में: मुकुलन में,
पकड़ा गया दीप्त तारा-जाली में।

नर के पौरुष, नारी की सुषमा में,
बाल-हास्य औ' बाला की लज्जा में,
एक हाथ है, किसका रे वह जिसने
कि वृहस्पति को नभ में सतत् भ्रमाया,
और एक अलक की अदभुत सज्जा में
सारी चतुराई खर्च दी।

6

मानवता के प्रेमी

कांग्रेस के मंच पर वह वामपंथी विचारों के हिमायती और आज़ादी के निर्भीक अधिवक्ता के रूप में उस समय भी खड़े थे, जब अधिकांश लाग गाल में अपनी जीभ दबाये केवल औपनिवेशिक ढंग की निजी सरकार के बारे में ही बोल पा रहे थे। वह पूरी दृढ़ता के साथ जेल गये थे···ज़ब मैं 1913 में कलकत्ता आया तो श्रीअरविंद पहले से ही एक निजंधरी व्यक्तित्व बन चुके थे। मैंने इतने हर्ष और उत्साह के साथ लोगों को किसी नेता के बारे में बातचीत करते हुए बहुत कम पाया है, उनके जीवन की कितनी कथाएँ प्रचलित थीं (इनमें कुछ संभवतः सही भी थीं और ये एक मुँह से दूसरे तक पहुँचती रहती थीं)''

—सुभाषचन्द्र बोस, **'एन इंडियन पिलग्रिम'**

अलीपुर का मुकदमा एक वर्ष तक चलता रहा और अंत में श्रीअरविंद रिहा कर दिये गये। जब वह जेल से बाहर आए तो बंगाल में अत्याचार की वजह से क्रांतिकारी उत्साह की लहर मंद पड़ गयी थी। परंतु विस्तृत भारतीय परिदृश्य में दो चीज़ें उपलब्ध हो गयी थीं। अब आज़ादी लोगों के लिए स्वप्न की चीज़ नहीं थी। प्रश्न 'क्या' नहीं, वरन 'कब' और 'कैसे' का था। ब्रिटिश हुकूमत को जो पहला धक्का लगा, उससे वास्तविकता का बेहतर मूल्यांकन संभव हुआ। वास्तविकता के बारे में उनके सचेत होने से पहले ही क़दम-ब-क़दम पैर जमाने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी।

'बंदे मातरम्' का प्रकाशन बन्द हो चुका था। श्रीअरविंद ने अब दो साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किए—अंग्रेजी में 'कर्मयोगिन' और बंगाली में **'धर्म'**। ये पत्र पूर्णतः राजनीतिक नहीं थे।

य मनुष्य के एक गहनतर अंतरबोध को प्रभावित करते थे, जिससे राजनीति अपने सच्चे धर्म को प्राप्त कर सकती थी। जैसे अर्जुन ने कुरुक्षेत्र के युद्ध

में कर्म योग की सिद्धि से अपने विशेष स्वधर्म को प्राप्त किया।

हालाँकि भारत में अपेक्षतया शांति का वातावरण था, परंतु श्रीअरविंद को अनिश्चित काल तक स्वतंत्र छोड़े रखना सरकार के लिए खतरे से खाली नहीं था। वायसराय लार्ड मिंटो नें, जो श्रीअरविंद को राज्य से निर्वासित करके काफ़ी खुश होते, भारत के गृह सचिव लार्ड मोर्ले को लिखा था कि 'वह संपूर्ण भारत में सर्वाधिक खतरनाक व्यक्ति है।' परन्तु लार्ड मोर्ले श्रीअरविंद को निर्वासित करने के प्रस्ताव पर सहज ही सहमत नहीं हुए।

कुछ दिनों से श्रीअरविंद अब अपने विचारों या अनुमानों के आधार पर अपनी कार्यवाहियों का निष्पादन नहीं कर रहे थे। वे निर्देश अब उन्नत लोक पर निर्भर थे। राजकीय स्तर पर श्रीअरविंद को निर्वासित करने के सुझाव पर ज़ोर-शोर से बहस चल रही थी। श्रीअरविंद यह जानते थे, परन्तु उन्हें इसकी परवाह नहीं थी। 1910 के प्रारंभ में एक दिन सायंकाल उन्हें चंद्रनगर चले जाने का आदेश मिला। यह स्थान कलकत्ता के निकट ही फ्रांसीसियों के अधिकार में था। वे सोचने-समझने या विचार-विमर्श के लिए रुके नहीं। उस 'आदेश' पर वे शीघ्र ही तत्पर हुए और दूसरे दिन सुबह चंद्रनगर पहुँच गए। कुछ सप्ताह बाद उस 'वाणी' ने उन्हें पांडिचेरी चले जाने का निर्देश दिया।

कुछ दिनों तक '**कर्मयोगिन**' का संचालन भगिनी निवेदिता और '**धर्म**' का संचालन श्रीअरविंद के युवा सहायक नलिनीकान्त गुप्त ने किया।

अपनी अंतर्दृष्टि में निश्चित रूप से श्रीअरविंद ने देखा कि धीरे-धीरे भारत ने आज़ादी प्राप्त कर ली है, और सत्य ही, उनके 75 वें जन्म दिन के अवसर पर 15 अगस्त, 1947 को आज़ादी मिली।[1]

उनके क्षितिज में स्वच्छ प्रकृति और नई गोचर भूमि आगे की ओर झाँक रही थी। अब वे अपने जीवन के सर्वोच्च उद्देश्य के प्रति सजग हो उठे थे— आध्यात्मिकता की गहराई में गोता लगाने तथा पूर्ण योग के सिद्धांतों की खोज और स्थापना के लिए—जिससे मनुष्य का पूर्ण रूपान्तरण हो सके।

राजकीय परिवेश में जो हो-हल्ला मचा था वह धीरे-धीरे काफ़ी कम होता गया और इसके बाद चुप्पी छा गयी। परंतु राजनीति के क्षेत्र से श्रीअरविंद के सन्यास लेने के संदर्भ में उनके बहुसंख्यक प्रशंसकों को संतुष्ट होने में काफ़ी समय लगा। कलकत्ता छोड़ने के एक वर्ष के भीतर ही श्री आर० पालित ने देश में सर्वत्र हो रही माँग की पूर्ति के लिए उनका पहला जीवन चरित्र प्रकाशित किया। कुछ लोग यह सोचते थे कि श्रीअरविंद हताश प्रशासन द्वारा पैदा की जा रही परेशानियों से बचने के लिए फ्रांसीसियों के क्षेत्र में भाग गए थे। ऐसे लोगों को

1. 15 अगस्त 1947 के प्रति अरविन्द का सन्देश यहाँ परिशिष्ट में प्रस्तुत किया गया है।

यह बताने का साहस श्री पालित में था कि श्रीअरविंद के मनोभावों को केवल बाहरी परिस्थितियों से ही नहीं जाँचना चाहिए। हमें कार्य के अंतर्भाव तक जाना चाहिए। क्या सांसारिक मामलों में अपनी वीरता दिखाने के लिए हमें अपने आध्यात्मिक हितों का बलिदान कर देना चाहिए ?

परंतु लोग और अधिक जानकारी के लिए विशेष उत्सुकता से प्रतीक्षा रत थे। कुछ लोग इस बात के लिए भाग्यशाली थे, कि श्रीअरविंद ने उन्हे पत्र लिखे। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने उल्लेख किया है, कि 'ऐसे पत्र हाथों-हाथ विशेष-कर आध्यात्मिकता और राजनीति में रुचि रखनेवालों के बीच तेज़ो से पहुँच जाते थे हम लोगों के बीच प्राय: कोई व्यक्ति ऐसे पत्र को सस्वर पढ़ता और शेष लोग उससे उत्साहित होते। ऐसे ही एक पत्र में अरविंद ने लिखा था : 'हमें ईश्वरीय विद्युत् शक्ति का डायनामो होना चाहिए ताकि हम में से प्रत्येक जब खड़ा हो तो उसके चारों तरफ़ के हजारों लोग प्रकाश, हर्ष और आनंद से भर जायें।'' हम लोगों को यह विश्वास हो गया था कि प्रभावकारी राष्ट्रीय-सेवा के लिए आध्यात्मिक प्रकाश आवश्यक है।

बाद में चित्तरंजन दास तथा रवीन्द्र नाथ ठाकुर सरीखे प्रसिद्ध व्यक्ति पांडिचेरी में उनसे मिले। उनके बारे में लोगों के मस्तिष्क से भ्रम मिटाने में इन व्यक्तियों के वक्तव्यों का बहुत बड़ा हाथ है। श्री ठाकुर ने 1928 में लिखा था :

'पहली बार ही उन्हें देखकर मुझे महसूस हुआ था कि वे आत्मा की खोज कर रहे थे और इसे उन्होंने प्राप्त कर लिया है। अनुभूति की इस दीर्घ प्रक्रिया में उन्होंने अपने भीतर प्रेरणा की एक मौन शक्ति संगठित कर ली है। उनका मुखमंडल एक तरह से भीतरी प्रकाश से देदीप्यमान हो रहा था और उनकी प्रशांत उपस्थिति ने मेरे सामने यह स्पष्ट कर दिया कि उनकी आत्मा किसी तितिक्षावादी सिद्धांत तक अशक्त नहीं हो गई है। [निरंकुश सिद्धांतों के माप से नियंत्रित या अशक्त नहीं हुई है] जो जीवन पर चोट पहुँचाने में आनन्द अनुभव करते हैं। मैंने अनुभव किया कि उनके मुखमंडल से समचित्तता के बारे में प्राचीन ऋषियों के वे उद्गार प्रस्फुटित हो रहे हैं, जिनसे मानव आत्मा को 'सर्व' के भीतर प्रवेश करने की स्वतंत्रता प्राप्त होती है। मैंने उनसे कहा, 'आपके पास शब्द' है और हम उसे स्वीकार करने की प्रतीक्षा में हैं। आपकी वाणी के द्वारा ही भारत विश्व को 'ध्यान पूर्वक मुझे सुनो'···संदेश देगा।

'वर्षों पहले जब मैंने अरविंद को उनके पराक्रमी यौवन के प्रारंभ में देखा था तो मैं गा पड़ा था—'ओ अरविंद, रवीन्द्र का नमन स्वीकार करो।' 'आज मैंने उन्हें प्रज्ञा के मौन वैभव के गहन परिवेश में देखा और चुपचाप मैं फिर से गा पड़ा—'अरविंद, रवीन्द्र का नमन स्वीकार करो।'

रवीन्द्रनाथ का कथन सत्य था। श्रीअरविंद ने जीवन को अस्वीकार नहीं किया था। इससे भी अधिक यह कि उन्होंने पूर्ण निश्चय के साथ पृथ्वी पर मनुष्य के लिए एक महानतम जीवन की खोज हेतु राजनीति से संन्यास लिया था। नये जीवन के रूप में मनुष्य के विकास से संबंधित उनके अंतर्दर्शन और अतिमन को पृथ्वी पर ले आने की उनकी साधना कोई ऐसी सहज चीज नहीं थी, जिसे सरलता से सराहा जा सके। फिर भी, जिन लोगों ने वास्तविक उत्सुकता से पांडिचेरी से आने वाले प्रकाश की प्रतीक्षा की, उन्हें दीर्घकाल तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। 1914 का वर्ष वास्तव में एक महत्त्वपूर्ण वर्ष है, जब इसी वर्ष 15 मार्च से प्रकाशित होनेवाले पत्र **'आर्य'** के द्वारा यह प्रकाश उन तक पहुँचने लगा, जब श्रीअरविंद की आध्यात्मिक सहयोगी **'माँ'** पांडिचेरी में उनसे मिली।

उनकी अनेक अन्य कृतियों के अतिरिक्त उनकी महत्त्वपूर्ण गद्य रचनाएँ : **'द लाइफ़ डिवाइन'** **'द सिक्रेट आफ़ द वेद'** **'द एस्सेज आन द गीता,** **'द साइ-कोलॉजी आफ़ सोशल डेवेलपमेंट'** : **'द ह्यूमैन साइकिल'** के नाम से अभि-हित : **'द आईडियल आफ़ ह्यूमैन यूनिटी'** **'द फ़्यूचर पोएट्री'** **'ए डिफ़ेंस आफ़ इंडियन कल्चर'** और **'द सिन्थेसिस आफ़ योग'** आदि **'आर्य'** में क्रमबद्ध रूप से प्रकाशित हुई थी। इस पत्र के माध्यम से लोगों ने जाना कि श्रीअरविंद की आध्यात्मिकता में तथाकथित सांसारिक जीवन को अस्वीकृत नहीं किया गया था। इसके बदले में जीवन के आध्यात्मीकरण तथा रूपान्तरण का विवेचन किया गया है। सर्वोच्च अर्थात् दिव्य भाव से मानवता का प्रेमी होने के लिए केवल यही काफ़ी नहीं कि मनुष्य से मनुष्य की तरह प्रेम किया जाये और फिर उसे वहीं छोड़ दिया जाए। वस्तुतः संसार में आडंबरों का प्राचुर्य है, जहाँ अहम् या मायामोह ही छद्मवेश में प्रेम है।

'केवल तभी, जब अपने मन से तुम ऊपर उठ जाओ
और 'एकम्' के प्रशांत विस्तार में जीने लग जाओ,
तभी शाश्वत परमानंद में, प्रेम हो सकता है शाश्वत,
और मानवीय बंधन के स्थान पर आसीन हो सकता है दैवी प्रेम।'

'सावित्री' IV, I

परन्तु श्रीअरविंद का मानव प्रेम इतने से ही व्यक्त नहीं होता कि उन्होंने उन्नतम (प्रतिमानसिक) मानव-नियति का अंतर्दर्शन प्राप्त किया था, जिसके अभिव्यक्तीकरण के लिए उन्होंने कठिन से कठिन परिश्रम किया और सब कुछ सहन किया; अपितु विशुद्ध सामाजिक और राजनीतिक अर्थ में भी 'मानव एकता का आदर्श' (द आईडियल ऑफ़ ह्यूमैन यूनिटी') ग्रंथ में उन्होंने उन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है, जो आज मानवता को परेशान और पीड़ित

करनेवाली जटिल समस्याओं का समाधान उपस्थित कर सकें।

यह केवल एकता के लिए आवेगात्मक अपील नहीं है और न भ्रातृत्व की रोचक घोषणा के लिए संघर्ष से क्लांत किसी पारंपरिक बुद्धिमत्ता का आवाहन भर है, क्योंकि सबसे प्रथम अध्याय को ही एक विशेष शीर्षक से अभिहित किया गया है : 'द टर्न टुवर्डस् यूनिटी : इट्स नेसेसिटी ऐंड डेंजर्स', जहाँ उन्होंने यह बताया है कि एकता की ओर सजग प्रयत्न करने के लिए तर्कसंगत आधार क्या होना चाहिए :

'यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि कोई महानतम सामाजिक या राजनीतिक एकता आवश्यक रूप से अपने आप में वरदान नहीं होती। इसके पीछे केवल तभी तक लगे रहना चाहिए जब तक कि यह और अधिक अच्छा, संपन्न, सुखी और शक्तिशाली व्यक्ति तथा सामूहिक जीवन का साधन व ढाँचा न प्रदान करे। परंतु अब तक मनुष्य का अनुभव इस दृष्टि-कोण के अनुकूल नहीं रहा है कि निकट रूप से ऐक्यबद्ध और पूरी तरह संगठित विशाल जन समूह किसी संपन्न और शक्तिशाली मानव जीवन के लिए उपयुक्त है। ऐसा प्रतीत हो सकता है कि सामूहिक जीवन सौहार्द्र-पूर्ण, विविध और लाभकारी तभी सिद्ध हो सकता है, जब वह अपने को लघुतर प्रदेश तथा सरल संगठनों में केंद्रित कर सके।

यदि हम मानवता के अतीत पर, जहाँ तक हमें ज्ञात है, चर्चा करें तो पायेंगे कि मानव जीवन की आकर्षक कालावधियाँ और जीवन चर्चा, जिनमें वह सर्वाधिक संपन्नता से जीवित रही और अपने पीछे सर्वाधिक मूल्यवान परिणाम छोड़े, संक्षेप में उन युगों और देशों से संबद्ध है, जहाँ मानवता एक दूसरे के साथ घनिष्ट रूप में क्रियाशील रहते हुए, वह किसी एकरूपता में समा नहीं गई थी और छोटे व स्वतन्त्र केन्द्रों में संगठित होने में समर्थ थी।'

परन्तु अब हम एक भिन्न समय में जी रहे हैं, जहाँ लोगों ने मानवता के सामाजिक, प्रशासनिक और राजनीतिक एकीकरण का स्वप्न देखना शुरू कर कर दिया है :—

'एक विशाल संगठन की आवश्यकता होगी, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति-गत और क्षेत्रीय दोनों तरह का जीवन कुचल दिया जाएगा, बौना बना दिया जायेगा और पानी, हवा, धूप से हीन पौधे की तरह उस अपेक्षित स्वतन्त्रता से रहित कर दिया जायेगा, तथा इसका तात्पर्य मानवता के लिए यह होगा कि जीवन में एक संतोषप्रद तथा उल्लासपूर्ण चहल पहल की पहली लहर आयेगी, इसके बाद ज्यों-त्यों करके जीवन-निर्वाह, गति-रोध और अन्त में क्षय।

'फिर भी मानवता की एकता स्पष्टतः प्रकृति की संभावित योजना है और ऐसा अवश्य होना चाहिए। केवल इस एकता को दूसरी परिस्थितियों और एहतियात के साथ होना चाहिए ताकि जाति व प्राण शक्ति की जड़ों में सुदृढ़ रहे और अपने एकत्व में वैभवपूर्ण समृद्ध एवं विविध बनी रहे।'

श्रीअरविन्द ने इतिहास में शक्तियों के प्रवाहों और प्रतिप्रवाहों की आधिकारिक वस्तुनिष्ठ पकड़ के साथ, विभिन्न युगों में हुए एकता के अनेक प्रयासों की कमज़ोरियों तथा अतीत की त्रुटियों की जाँच-पड़ताल की है और यह भी उन्होंने सामाजिक और सांसारिक व्यवस्था के विकास के पूर्वानुमान के साथ किया है :—

"जिस रक्षाशक्ति की आवश्यकता है वह एक नया मनोवैज्ञानिक तत्त्व है, जो शीघ्र ही मानवता के लिए आवश्यक ऐक्य बद्ध जीवन की रचना करेगा और बाध्य करेगा कि यह स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का स्वागत करे। ऐसा लगता है कि वह विकासमान शक्ति मानवता का धर्म है। जिसका उस तरफ़ झुकाव है, क्योंकि यह मानव एकता को सार्थक बनाता है।

यह जाति-विचार को रखते हुए भा व्यक्ति और स्वाभाविक मानव-समुदाय का सम्मान करता है। किन्तु इसका वर्तमान बौद्धिक रूप शायद ही पर्याप्त हो। विचार अपने-आप में तथा अपने प्रभावों में शक्तिशाली नहीं है कि वह जाति के समस्त जीवन को अपने अनुरूप गढ़ ले। कारण, इसे मनुष्य प्रकृति में अहंभाव युक्त पक्ष के आगे, जो एक समय हमारी सम्पूर्ण सत्ता थी और अभी भी उसका नव-दशमांश है और जिसके साथ इसके वृहत्तर विचार का संघर्ष रहता है बहुत अधिक झुकना पड़ता है। दूसरी ओर, क्योंकि यह मुख्यतया तर्क को अपना आधार मानता है, यह यांत्रिक समाधान की ओर आसानी से मुड़ जाता है। कारण बौद्धिक विचार अन्त में सदा अपने यन्त्र का बन्दी बन जाता है, वह अपनी ही अत्यधिक बन्धनकारी क्रिया का दास बन जाता है। तब एक नया विचार इस तर्कसंगत यन्त्र की एक और प्रवृत्ति को लिए हुए उसके विरुद्ध खड़ा हो जाता है और उस यन्त्र को तोड़-फोड़ देता है, किन्तु वह उसे इसलिए तो तोड़ता है कि अन्त में वह उसके स्थान पर एक दूसरी यांत्रिक प्रणाली की, किसी अन्य मत सिद्धान्त या आचार-पद्धति की स्थापना कर सके।

मानवता का आध्यात्मिक धर्म भविष्य की आशा है। इस धर्म से हमारा मतलब वह धर्म नहीं, जिसे साधारणतया लोग एक सार्वभौम धर्म, प्रणाली, मत, बौद्धिक विश्वास, सिद्धान्त एवं बाह्य विधि कहते हैं। मनुष्य जाति इन साधनों द्वारा एकता प्राप्त करने का प्रयत्न कर चुकी है, परन्तु

उसके हाथ असफलता ही लगी और वह असफलता की अधिकारी भी थी, कारण एक ऐसी सार्वभौमिक धार्मिक पद्धति हो भी नहीं सकती, जो मानसिक विश्वास और प्राणिक रूप में एक हो। आंतरिक भावना एक अवश्य है, किन्तु अन्य सबसे अधिक आध्यात्मिक जीवन अपनी आत्म-अभिव्यक्ति तथा विकास के साधनों में स्वतन्त्रता और विविधता आग्रही होता है। मानवता के धर्म का अर्थ यह विकसनशील उपलब्धि है कि एक गुप्त आत्मा एवं एक दिव्य सद्वस्तु का अस्तित्व है, जिसमें सब एक है और मानवता आज इस भूतल पर उसकी अभिव्यक्ति का सर्वोच्च साधन है। मानवजाति और मानवप्राणी ही ऐसे साधन हैं, जिनके द्वारा वह क्रमश: यहाँ अपने आपको प्रकट करेगी। इसका मतलब यह है कि इस ज्ञान को जीवन में चरितार्थ करके पृथ्वी पर इस दिव्य आत्मा का राज्य स्थापित करने के लिए अधिकाधिक प्रयत्न किये जाएं। हमारे अन्दर इसका विकास होने से अन्य साथी मनुष्यों के साथ एकत्व की भावना हमारे समस्त जीवन का प्रमुख सिद्धान्त बन जाएगी, यह केवल सहयोग का सिद्धान्त नहीं, वरन् एक अधिक गहरे भ्रातृत्व का, एकता और समानता की वास्तविक एवं आंतरिक भावना तथा सर्व-सामान्य जीवन का सिद्धान्त बन जाएगा। व्यक्ति को यह अनुभव करना होगा कि अपने साथियों के जीवन में ही उसके अपने जीवन की पूर्णता निहित है। जाति को भी यह अनुभव करना होगा कि व्यक्ति के स्वतंत्र और पूर्ण जीवन पर ही उसकी अपनी पूर्णता और स्थायी सुख परस्पर निर्भर है। इस धर्म के अनुसार, एक ऐसा अनुशासन एवं मुक्ति का मार्ग अर्थात् एक ऐसा साधन होना चाहिए, जिसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य इसे अपने अन्दर विकसित कर ले, जिससे कि यह जाति के जीवन में भी विकसित हो सके। इसका क्या अर्थ है। इसके सम्बन्ध में यदि हम पूरा-पूरा जानना चाहें तो यह एक इतना बड़ा विषय बन जायेगा कि इसका विवेचन करना यहाँ संभव नहीं होगा, केवल इतना कहना ही काफ़ी है कि अन्तिम मार्ग इसी दिशा में है। यह सत्य है कि यदि यह भी और सब की तरह एक विचार मात्र है तो इसका भी वही हाल होगा जो और विचारों का होता है। किन्तु यदि यह हमारी सत्ता का सत्य है, तो यह अवश्य ही ऐसा सत्य है, जिसकी ओर सब बढ़ रहे हैं, और इसी में एक मूलभूत आंतरिक, पूर्ण और वास्तविक मानव-एकता के साधन प्राप्त होने चाहिये, यही एकता मानव जीवन के एकीकरण का एकमात्र सुरक्षित आधार बनेगी। आध्यात्मिक एकत्व ही मनुष्य-जीवन के उच्चतर आदर्श का आधार होगा, क्योंकि यह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक एकता उत्पन्न कर देगा, जो किसी बौद्धिक अथवा बाह्य एकरूपता पर आधारित नहीं होगी

और जीवन की उस एकता को अवश्य ही उत्पन्न कर देगी, जो एकीकरण के यांत्रिक साधनों से बँधी नहीं होगी, वरन एक स्वतन्त्र आंतरिक विविधता तथा एक स्वतन्त्र रूप की विविधतापूर्ण बाह्य अभिव्यक्ति के द्वारा अपनी सुरक्षित एकता को समृद्ध बनाने के लिए सदा तैयार रहेगी।

यदि यह अनुभूति मनुष्य जाति में शीघ्र ही विकसित हो सकी, तो हम एकीकरण की समस्या को आंतरिक सत्य से लेकर बाह्य रूपों तक, एक अधिक गंभीर और सच्चे तरीके से सुलझा सकेंगे। तब तक, यांत्रिक साधनों द्वारा इसे चरितार्थ करने का हमारा प्रयत्न चालू रहना ही चाहिए। किन्तु मानव जाति की उच्चतर आशा इसमें है कि इस सत्य को प्राप्त करनेवाले और इसे अपने अन्दर विकसित करनेवाले मनुष्यों की संख्या बढ़ती जाये जिससे कि जब मनुष्य का मन अपनी यांत्रिक प्रवृत्ति से मुक्त होने के लिए तैयार हो जाये—यह शायद तब होगा जब उसे यह पता लग जायेगा कि उसके सब यांत्रिक समाधान अस्थायी और निराशा-जनक हैं—तो आत्मा का सत्य प्रकट हो सके उसकी सर्वोच्च संभवनीय और मनुष्य जाति को प्रसन्नता और पूर्णता का मार्ग दिखा सके।

उनके एक लेख **'थॉट्स एंड ग्लिम्प्सेज'** (विचार एवं झाँकियाँ) के कुछ वाक्यों पर विचार करके हुए हम इस चर्चा का समापन कर सकते हैं।

'—वह नई वस्तु क्या है, जिसे हमारे लिए उपलब्ध करना बाकी है? **'प्रेम'** क्योंकि अब तक हमने घृणा और स्वान्तः सुख को ही उपलब्ध किया है; **'ज्ञान'**, क्योंकि अब तक हमने भूल, इन्द्रियज्ञान और चिंतन को ही उपलब्ध किया है; **'शक्ति'** क्योकि अब तक हमने जन्म, विकास और मत्यु ही उपलब्ध किया है; **'एकता'**, क्योंकि अब तक हमने युद्ध और सह-संघ को ही उपलब्ध किया है।

एक शब्द में कहें तो यह है; 'देवत्व' दिव्य, मूर्ति में हमको फिर से गढ़ना।'

7

प्रेम और ऊषा के कवि

'सृष्टि की कम्पायमान शिखा पर जाज्वल्यमान होते हुए,
ऊषा ने भव्य रंगों से अपना आभामंडल, निर्मित किया—
और अपनी महिमा के बीज को
काल के हृदयतल में बो दिया।

—ओ प्रेम, चली गई आँधी, टल गया संकट।
ओ मेरी रानी, हरित-स्वर्णिम बनों से होकर
हम अब सुनहले खेतो में विचरेंगे
—हमेशा तिरते रहने के लिए,
एक स्वर्णिम स्वप्न में ओ, पृथ्वी की स्वर्णिम लक्ष्मी !
जबतक कि वे चिरंतन दीप्तिमान द्वार हमारे सामने न खुल जाय—
तेरा स्वर्गिक गृह।'
—श्रीअरविंद : **'सावित्री'**

यह अंश सोमदेव के **'कथासरित्सागर'** की एक लोकप्रिय कथा से उत्कृष्ट माधुर्य में ढली, 1915 में रचित श्रीअरविंद की कृति **'वासवदत्ता'** से उद्धृत है। इसका अंत स्वर्णिम स्वप्न में 'नायक के सदैव तिरते रहने की आशा के साथ हुआ है। इस बात का उल्लेख रोचकतापूर्ण है कि श्रीअरविंद ने अपनी एकमात्र त्रासदी **'रोडोगुन'** भी इसी अवधि में लिखी थी। अपने राज्य से निर्वासित एन्टिओक्स और टिमोक्लस नामक दो पुत्र पिता की मृत्यु के बाद अपनी माँ क्लिओपेट्रा के पास लौट कर आते हैं। शीघ्र ही दोनों महल में क़ैद सुंदरी राजकुमारी 'रोडोगुन' पर आसक्त हो उठते हैं। रोडोगुन उस बहादुर एन्टिओक्स से प्रेम करती है, जिसके बारे में दुर्भाग्यवश प्रारम्भ से ही उसकी शक्तिशाली माँ की भ्रमपूर्ण धारणाएँ थीं। ईर्ष्यालु टिमोक्लस अपने भाई की हत्या कर देता है। दिल को ठेस लगने से रोडोगुन की मृत्यु हो जाती है। एन्टिओक्स और रोडोगुन के समक्ष एकबार किसी संन्यासी ने जो भविष्यवाणी की थी, वह सत्य होकर सामने आयी :

'मैं, नियुक्त आत्मा की वाणी—आई हूँ तुम्हें बताने,
तुम सम्राट नहीं बनोगे, क्योंकि अंतकाल की घड़ी में,

परंतु निर्बाध भावावेश के इन सभी प्रदर्शनों के बाद जीवित बचे टिमोक्लस के पास जीने के लिए क्या है ? कुछ भी नहीं—सिवा अपने मृत्यु सदृश अस्तित्व के, उसके लिए जीवन किसी मूर्ख व्यक्ति द्वारा कही गयी कथा मात्र रह गया है, जिसमें केवल ध्वनि और उन्माद है, सार्थकता बिल्कुल नहीं :

'मेरे अंतर में कुछ टूट गया है,
जिसे चिकित्सक जोड़ नहीं सकते । ओ राजकुमार निकानोर !
तुम सीरिया के राजसी रक्त से, उत्पन्न हो,
अपने ही उत्स से बेदाग़ सेल्यूक्स,
तुम्हारी ही वंश परंपरा में, तुम्हारा अनुसरण करेगा ।
भाई, मेरे भाई, सुबह या शाम मिस्री
उद्यानों में साथ-साथ खेलते हुए या जब हम पोलमी के बग़ीचों में,
स्वेच्छा से घूमा करते थे, चहलक़दमी करते थे हम,
एक दूसरे की गलबाँही देकर दिल से दिल मिलाए—तब
हमने सपना भी नहीं देखा था कि सब कुछ ऐसे समाप्त हो जाएगा ।
पर अब हम चिरकाल के लिए विभाजित हो गए हैं । मुझे हमेशा ही
छायाओं के नीचे मित्रहीन होकर घूमना है । परंतु तुम और वह
सुखी एस्फोडल फूलों के बीच गहरे तल में बाँहों में बाँहे डाले लेटे
रहोगे,
सुनोगे इलीशियन हवाओं की साँय-साँय;
तब मैं अकेला ही चलता रहूँगा ।'

मनुष्य के अज्ञ अस्तित्व की जटिल बनावट में महत्वाकांक्षा उस तत्त्व की विकृति है, जिसे मनुष्य के क़दमों को वस्तुतः सही दिशा में, जिसे हम प्रेरणा कहेंगें, पथप्रदर्शन करना चाहिए । निम्न कृत्यों तथा इनकी अपरिहार्य प्रतिक्रियाओं, 'कर्म' और उसके परिणाम के दूषित भँवर से तब तक नहीं बचा जा सकता जब तक कि मनुष्य साहस पूर्वक कूदकर इनसे बाहर न आए । भाग्य के निष्ठुर पहियों के नीचे वस्तुतः न जाने कितने नायक, कितनी सभ्यताएँ कुचली जा चुकी हैं । श्रीअरविंद की कृति **'इलियन'** में हम इस स्थिति का एक दुःखद, किन्तु महान चित्रण पाते हैं । **'ट्रोजन'** की कथा पर आधारित यह प्रारंभिक और असमाप्त महाकाव्य उस समय से संबंधित है, जब उस नगर पर ऊषा की लाली छा जाती है, जो पहले से ही दुर्भाग्य के चंगुल में फँसा था ।

'अब देवी के थिरकते स्वर्णिम चरण और क़रीब झिलमिला उठे,
पहाड़ियों और अन्तरीपों पर अपनी भव्यता के वस्त्र फैलाती,
नियति निर्णायिका आई—अपनी आँखों से सब कुछ को देखती,
वह लाने वाली है—मनुष्य के लिए उसकी भाग्य की घड़ी को,

और दुर्भाग्य की घड़ी को,
अपने ज्योतिर्मय लक्ष्य में लवलीन, परवाह नहीं उसे,
उस संध्या की, और रोने-धोने की—
वह भाग्य निर्णायिका तक आकर ठहर गई, निर्लिप्त भाव से,
इलियन की रहस्यमय महत्ता के ऊपर,
प्रातःकाल की स्फटिक ज्वालाओं की लपलपाती जिह्वाओं की तरह गुंबदों की पंक्ति पर,
मीनारों के शिखरों की दूधिया लय-रेखा पर,
सूर्य देवता के तूर्य नाद की तरह।
राष्ट्र की समस्त कृतियों और उसके प्रेम और
उसके हास्य के भी ऊपर—
राजपथ और घरों, हाट और देवालय को
दीप्तिमान करती अंतिम बार,
दृष्टि डालती पुरुषों पर, जिनका मरण निश्चित था,
स्त्रियों पर जिनके भाग्य में दुख ही लिखा था,
दृष्टि डालती—उस सौन्दर्य पर, जिसे आग में भस्म होना था,
और वध की हँसिया पर,
उस नियति नियंत्री ने देवताओं द्वारा लिखित रक्तवर्ण भाग्य पत्रक को ऊपर उठाया,
उस अगोचर वायु में सुदूर, जो मानव जाति
और उसके भविष्य को अपने में लपेटे हुए है,
उसे कीलित कर दिया और ओझल हो गयी,
मुस्कराती हुई, पीड़ातीत और मरणातीत-सी मुसकान में।
मृत्यु के ये व्यवसायी, पर मृत्यु को जो जानते नहीं,
जो प्रातः घटना का बीज बोते हैं—
रात्रि में तैयार, काटने के लिए।

जो भी हो, 1912 या 1913 में रचित **'एरिक'**[1] शीर्षक एक अन्य नाट्यरोमांस में भाग्य को भिन्न कोटि का महत्त्व प्राप्त हुआ है। यहाँ अंत में प्रेमिका से मिलन होने के बाद नायक एरिक के आनन्द का प्रत्युत्तर देती हुई नायिका एस्लाग कहती हैं :

'यह विधि का विधान था। और अब, हमारे लिए
ओ प्यारे ! विश्व फिर से प्रारंभ होता है—'

---

1. अरविन्द के पाँच पूर्ण और तीन अपूर्ण नाटक उपलब्ध हैं। पूर्ण नाटक हैं : ''पर्सिस द डेलिवरर', 'वासवदत्ता', 'रोडोगुन', 'दि वजीर्स आफ बसरा एण्ड एरिक', अपूर्ण नाटक है : 'द हाउस आफ़ बूयूट', 'द मेड इन द मिल' और 'द प्रिंस आफ़ ईडर'

प्रेम ने एक चमत्कार कर डाला है। जिस एस्लाग में कभी एरिक के विरुद्ध घृणा भाव था और वस्तुतः उसकी हत्या का अवसर प्राप्त करने के लिए वह एरिक से मिलने गयी थी, वही एस्लाग प्रारंभ से ही सुखद अशांति में फँस गई है, क्योंकि एरिक—

'वह शक्तिशाली मानव है !
एक 'देवता' जैसी उसकी आकृति, मुखमंडल, वह—
दीप्तिमान आँखों से युक्त अधिपति है। एक संगमर्मरी,

समय आने पर वह 'लौह' और 'घमंडी' एरिक को दया, महानता और उद्यम से भरपूर पुरुष के रूप में परिवर्तित कर देती है।

'रोडोगुन' में नायक एन्टिऑक्स अपने वीरतापूर्ण गुणों के बावजूद अत्यंत महत्वाकांक्षी था और प्रेम द्वारा ऐसा सुखद परिणाम फलीभूत होने देने में उसका अहं आड़े आता था। प्रेम तो अच्छाई की दिशा में परिवर्तन और उदात्तता की ओर उन्मुख होने का रहस्य है :

'यह प्रेम काल के अंतराल को भर देता है।
प्रेम से हम नक्षत्रों के साथ अपना सौहार्द्र जोड़ते हैं।'

परंतु प्रेम नामक संज्ञा से जो कुछ ध्वनि निकलती है, उसमें किस हद तक सच्चा प्रेम होता है ?

जीवित रहना और प्रेम करना तो अपरिमित वस्तुओं की निशानी है,
प्रेम शाश्वतता के परिमंडल से आयी हुई महिमा है। जो प्रेम के नाम,
रूप और आनंद को चुरा भर लेता है—
निम्न शक्तियों द्वारा अवमानित, विकृत और उपहासित,
वह अब भी देवत्व है, जिसके द्वारा सब कुछ बदल सकता है।'—**'सावित्री'**

परंतु यदि प्रेम ने मानव जीवन में अपने मंद प्रस्फुटन के द्वारा भी चमत्कारों की सृष्टि की है, तो आध्यात्मिक शुद्धता और जाज्वल्यमत्ता के जाग्रत सूर्य की आभा में विकसित होने पर यह प्रेम क्या अत्यंत आश्चर्यजनक नहीं होगा ?

'जब तुम अपने मन पर विजय प्राप्त कर लोगे और एकत्व के शांत विस्तार में निवास करोगे, तभी चिरानंद में प्रेम शाश्वत होगा और दिव्य प्रेम मानव संबंध का स्थान लेगा।' —**'सावित्री'**

जो भी हो, मनुष्य प्रेमी और ईश्वर उद्देश्य है—'ऋषि[1] कविता की

1. 'द ऋषि' शीर्षक से श्रीअरविन्द की एक लम्बी कविता का कथ्य इस प्रकार है : विश्व के प्राचीन युगों में जब उत्तर ध्रुवीय महाद्वीप का अब भी अस्तित्व था, राजा मनु किसी ध्रुवीय ऋषि से ज्ञानार्जन करते हैं। ऋषि राजा को ज्ञान के परस्पर विरोधी पार्श्व-प्रकाश में दीर्घकाल तक उलझाने के बाद अन्त में उन्हें बताते हैं कि मनुष्य के लिए मुख्यतया क्या जानना आवश्यक है।

यह चरम अभिव्यक्ति है ।

जहाँ मर्त्यलोक के कष्टों और यातनाओं बीच आनन्द के लिए उत्सुक, ज्ञान के पिपासु, शक्ति की खोज में प्रयत्नशील लोग ऊपर चढ़ने के लिए प्रयास कर रहे हैं या घाटियों में प्रतीक्षारत हैं, वहाँ विश्व में अवतरित होते समय ऊषा देवी 'अह्ना' भी सच्चे प्रेम की व्याख्या और संदेश लेकर आती है :

'कामी नश्वर प्राणी का स्वर, अनंत कामना का हृदय,
तू, जो जीवित रहा दीवारों के घेरे में,
तेरी इन्द्रियों से आबद्ध तेरी आत्मा करती रही है दुष्कर्म ।
किंतु अन्ततः मैं अवतरित होती हूँ चंचल और भयंकर,
मधुर और छद्म किसी ने तुझे विष और अमृत दिया है
चला गया लुभा कर तुझे हम दोनों मिलकर पकड़ लेंगे
उस वंशी को और निष्ठुर वंशीवादक को,
मानव-पुत्र, तूने अपने जीवन को गंधहीन फूलों का ताज पहनाया है,
भागता फिरा है कष्टदायी सुखों के पीछे ।
किंतु मैं आती हूँ और अर्द्धरात्रि छिन्न-भिन्न हो जायेगी ।
देख, मैं आ गयी और मेरे पीछे उतर रहा है,
'ज्ञान' और विद्युत् गर्जन के साथ अन्तरिक्ष को पूरती महाशक्ति,
वह देवदत्त, अपने हृदय पर धारण किए है—
आनन्द की तेरी भुजाओं के लिए ।
तू देखेगा उसके मुख को—किमी शिशु के मुख या फूल की तरह
निश्चल,
उन्मुक्त जैसे प्राचीन 'अदन' में
उसकी लीला से बिना डरे, (कब ?)
जब मैं तेरी कामनाओं को बन्दी बना लूंगी
और शिकार खोजती शेरनी की तरह उनका भक्षण कर लूंगी ।
तू कष्ट नहीं भोगेगा सदा, न
ही मोहासक्त और परित्यक्त की तरह मुझे पुकारेगा ;
उसके पदचिह्न के लिए एक जाल है मेरे पास,
उसके लिए मैंने जंजीर ले रखी है ।
तो, आओ वृदावन में आनन्दघन की आत्मा !
तेज़ी, खूब तेजी से अनुकरण करो, उस नृत्य का
जिसे मैं श्याम के साथ तुझे सिखाउँगी, दास और स्वामी के लिये ।
जाग्रत और आह्लादित आत्मा से वंशी के सुरों को सुनो,
कुचल दो 'उस आनंद' को

जो अपमानित करनेवाले माधुर्य के सामने झुक और दुबक जाता है।
तब तू जानेगा कि उस नृत्य का तात्पर्य क्या था
गीत और गायक
को आँक पाएगा, विद्युत् गर्जन के पीछे तू सुनेगा उसकी लय को
उसकी उँगली के विद्युत् कंपन से निकली,
तब तू समझेगा वृंदावन कुंजों की मर-मर ध्वनि,
और यमुना के हास्य को,
तब तू रासलीला में अपना स्थान लेगा
और दिव्यानन्द का अपना भाग पाएगा।'

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि ऊषा देवी का अवतरण ही सच्चे अर्थ में दिव्य प्रेम को उसकी सारी महिमा के साथ, आत्मसात्करण का प्रारंभ है।

8

भारत के अतीत का उद्घाटन

"भारत अपने अतीत के उद्घाटन में अपने भविष्य की आशा देखता है।"

—**श्रीअरविंद**

मानव प्रगति के अगले महान् क्रम में, भौतिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक, नैतिक और अतींद्रिय विकास करना है, और इसके लिए स्वतन्त्र एशिया तथा उसके अन्तर्गत स्वतन्त्र भारत को अगुआ होना चाहिए, इसलिए उसे विश्व की रक्षा हेतु स्वतन्त्रता का प्रयास आवश्यक है। जीवित रहने के लिए भारत में स्वराज ज़रूरी है—सुखपूर्वक और अच्छी तरह जीवित रहने के लिए। भारत के लिए स्वराज ज़रूरी है—सारे विश्व को जीवित रहने लिए को, किसी राष्ट्र के राजनीतिक या भौतिक लाभ के लिए गुलाम के रूप में नहीं बल्कि मानव जाति के आध्यात्मिक तथा नैतिक लाभ के लिए स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप में।

यह घोषणा भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष की शुरूआत के समय की है। परन्तु श्रीअरविन्द की प्रतिबद्धता गहन थी इसलिए उन्होंने भारत के प्राचीन आध्यात्मिक क्रान्तिदर्शन तथा उसकी सांस्कृतिक और साहित्यिक विरासत के महत्त्व को सामने लाने के लिए '**आर्य**' द्वारा ही उनका लेखन सामने आया। ये रचनाएँ **'एसेज़ ऑन द गीता', 'आन द वेद' और 'द फाउण्डेशंस आफ इण्डियन कल्चर'** में संकलित हैं।

एक तरफ़ जेम्स कज़िन की पुस्तक 'न्यू वेज़ इन इंग्लिश लिटरेचर' पर किये गये विचार-मंथन से श्रीअरविन्द के 'द फ्यूचर पोएट्री' की रचना का आधार मिला तो दूसरी तरफ़ विलियम जी. आर्चर द्वारा अनुभूत, जिनका इस विषय पर लिखने का मुख्य दावा 'निश्चय ही उच्चकोटि की संदेहरहित अनभिज्ञता' थी, और सर जान वुडरफ़ के उसके प्रत्युत्तर से उन्हें भारतीय विरासत के मूल्यांकन पर पुनर्विचार की आवश्यकता को लेकर 'द फाउण्डेशन्स ऑफ इण्डियन कल्चर' पुस्तक लिखने का अवसर मिला।

श्री आर्चर ने भारत की सभी महान उपलब्धियों, दर्शन, धर्म, काव्य, चित्रकला, शिल्पकला को एक साथ मिलाकर, उसकी अकथनीय असभ्यता के अरुचिकर ढेर के रूप में पूरी तरह से आलोचना की थी। श्री आर्चर ने गड्डमड्ड विवेचन की प्रतिभा के साथ जो ऊटपटांग ढेर सँजोया था, उसका पर्दाफ़ाश करने के बाद श्रीअरविन्द ने उस संदर्भ में मौजूद मुख्य मुद्दे की ओर संकेत किया।

> 'तो फिर यह प्रश्न नहीं करना चाहिए कि भारत सभ्य है या नहीं, वरन् यह कि उसकी सभ्यता का निर्माण करनेवाले मानव-संस्कृति का उसे नेतृत्व करना है या पुराने यूरोप के बौद्धिक उद्देश्य का अथवा नए यूरोप के जड़वादी उद्देश्य का नेतृत्व करना है ? क्या आत्मा, मन और शरीर का सामंजस्य अपने-आप को हमारी भौतिक प्रकृति के उस स्थूल नियम पर प्रतिष्ठित करेगा, जो केवल बुद्धि के द्वारा नियन्त्रित होगा या जिसे अधिक-से-अधिक एक क्षीण एवं निष्प्रभाव आध्यात्मिक प्रभा का स्पर्श प्राप्त होगा या फिर, क्या आत्मा की प्रबल शक्ति नेतृत्व करेगी तथा बुद्धि, मन और देश की हीनतर शक्तियों को एक उच्चतम सुसंगति, एक विजयी चिर-विकसनशील संतुलन के हित अधिक उदात्त प्रयत्न करने के लिए बाध्य करेगी ? भारत को अपनी रक्षा करनी होगी और इसके लिए उसे अपने सांस्कृतिक विधि-विधानों का इस प्रकार नया निर्माण करना होगा कि वे उसके प्राचीन आदर्श को अधिक तेजस्वी, अधिक घनिष्ठ एवं पूर्ण रूप में प्रकट करें। फिर उसे अपने आक्रमण के द्वारा इस प्रकार उन्मुक्त ज्योति की लहरों के आत्मप्रसारी विजयी चक्करों के रूप में उस समस्त जगत् के ऊपर फैला देना चाहिए, जिसे एक बार उसने सुदूर युगों में आविष्कृत किया था या कम-से-कम प्रकाश प्रदान किया था। संघर्ष के आने की बात को कुछ काल के लिए स्वीकार करना होगा, तब तक के लिए जब तक कि विरोधी संस्कृति का आक्रमण जारी है। पर, क्योंकि कार्यतः यह पश्चिम की उन्नत विचार धारा से उदभूत होने वाली सभी श्रेष्ठ वस्तुओं के अभ्युदय में सहायक होगा, अतः इसके परिणामस्वरूप एक उच्चतरस्तरीय सामंजस्य का सूत्रपात हो जाएगा और साथ ही, एकता की तैयारी भी आरम्भ हो जायेगी।

उसे अपने तथा मानव प्रणियों के लिए कुछ करना है। अब वह तत्त्व, जो जागृति की जिज्ञासा में तल्लीन है अंग्रेज़ी ढंग के पूर्वी देशों की जनता पश्चिम के विनयी शिष्य और पश्चिम की सफलता-विफलता को दोहराने की नियति भोगती हुई जनता नहीं है अपितु आज की प्राचीन अविस्मरणीय 'शक्ति' अपनी गहनतम आत्मा पर पुनः अधिकार कर रही है, प्रकाश के सर्वोच्च साधन की ओर अपनी मनीषा और अधिक उन्नत कर रही है, धर्म

का विशेष विस्तृत रूप और पूर्ण अर्थ खोजने के लिए गतिशील हो रही है।

'द फाउण्डेशंस आफ इंडियन कल्चर' में उन्होंने 'वेद' के संदर्भ में निम्नलिखित विचार व्यक्त किया है :

> वेद को जब इस प्रकार समझ लिया जाता है तो वह एक अद्भुत उदात्त और शक्तिशाली काव्य-रचना ठहरता है। साथ ही, उसका यह आकर्षण तो है ही कि वह संसार का सर्वप्रथम तथापि विद्यमान धार्मिक ग्रन्थ है और मनुष्य, परमेश्वर तथा विश्व की सबसे प्राचीन व्याख्या है। वह अपने रूप और भाषा में कोई बर्बर कृति नहीं है। वेद के कवि उत्कृष्ट काव्य-कला में विशारद हैं, उसके स्वर-ताल देवताओं के रथों के समान अलंकृत और ध्वनि के दिव्य तथा विशाल पंखों पर सवार हैं, एक साथ ही केन्द्रित तथा सुदूरव्यापी हैं ;—गतिछन्द में महान् और स्वर लहरी में सूक्ष्म हैं, उनकी वाणी गहराई के कारण भावोत्तेजक और ऊँचाई के कारण वीर रसमयी होती हुई एक महान् शक्ति का उद्गार है, अपनी रूपरेखा में विशुद्ध, साहसपूर्ण और विराट् है; एक ऐसी वाणी है, जो हृदय पर सीधे और सहत रूप में प्रभाव डालती है तथा जो अर्थ और संकेत से इस तरह परिपूर्ण है कि प्रत्येक मन्त्र अपने-आप में एक सशक्त और पर्याप्त वस्तु के रूप में अपना अस्तित्व रखता है और साथ ही, जो कुछ पहले से विद्यमान है और जो बाद में आता है, उन दोनों के बीच के एक बड़े सेतु के रूप में भी अपना स्थान रखता है। निष्ठापूर्वक अनुसरण की हुई एक पवित्र और याजकीय परंपरा ही उन्हें अपने विषय का बाह्य रूप और सारतत्त्व दोनों प्रदान करती थी, परन्तु यह सार तत्व उन गहरे से गहरे आंतरात्मिक एवं आध्यात्मिक अनुभवों से गठित होता था, जिन तक मानव आत्मा की पहुँच हो सकती है और वे रूप ह्रास को प्राप्त होकर कदाचित् ही कभी रूढ़ि में परिणत होते हैं या फिर कभी भी नहीं होते, क्योंकि जिस वस्तु को द्योतित करने के लिए अभिप्रेत हैं, उसे प्रत्येक कवि अपने जीवन में उतारता था और अपने वैयक्तिक अंतर्दर्शन की सूक्ष्म या उदात्त अवस्थाओं के द्वारा वह उन्हें अपने मन के लिए अभिव्यक्ति का नया रूप प्रदान करता था। विश्वमित्र, वामदेव, दीर्घतमस् तथा अन्य बहुत से ऋषियों के वचन एक उदात्त और रहस्यमय काव्य की अत्यन्त असाधारण उच्चताओं एवं विशालताओं को स्पर्श करते हैं और कुछ एक, सृष्टि सूक्त-जैसी कविताएँ भी हैं, जो ओजस्वी और प्रसादपूर्ण रूप में विचार के उन शिखरों पर विचरण करती हैं, जिन पर उपनिषदें अधिक स्थिरतापूर्वक श्वास लेती हुई निरंतर विचरण करती थीं। प्राचीन भारत के मन ने कोई भूल नहीं की जब कि उसने अपने समस्तदर्शन और धर्म का तथा अपनी संस्कृति की

सभी प्रधान बातों का मूल इन ऋषि-कवियों की वाणी में जा ढूंढा, क्योंकि भारतवासियों की समस्त भावी आध्यात्मिकता का बीज अथवा प्रथम अविर्भाव के रूप में वहीं (उनकी वाणी में ही) निहित है।

'ऑन द वेद' में क्या वेद के बारे में कोई गोपनीयता है, इस प्रश्न से विवेचन शुरू करते हुए उन्होंने इस विषयवस्तु पर विचार किया है और व्याख्या के साथ कई स्तोत्रों की विवेचना की है।

फिर भी, भारतीय विद्या के संदर्भ में उनकी एक अन्य महान रचना, कई लोगों के अनुसार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना **'द एसेज ऑन द गीता'** है :

'गीता विशिष्ट रूप में असाधारण निष्पन्न कृति है और अपनी अनुभूति में सदैव पुनर्नवीनीकृत होने के कारण यह उसी रूप में आज भी ताज़ी, स्वच्छ तथा अपने सार तत्त्व में नवीन है, जिस रूप में यह अपनी रचना अथवा महाभारत की रूप रेखा तैयार होने के समय थी। आज भी, भारत में इसे उन सिद्धांतों का महान पुंज माना जाता है, जो सर्वाधिक अधिकार के साथ धार्मिक चिंतन का नियंत्रण करते हैं। इसके उपदेशों को सर्वांग रूप में तो नहीं परंतु प्रायः सभी तरह के धार्मिक मतों तथा विश्वासों द्वारा सर्वाधिक मूल्यवान माना जाता है। इसका प्रभाव केवल दार्शनिक या शैक्षणिक ही नहीं, अपने चिन्तन और क्रियाशीलता दोनों संदर्भों में तात्कालिक तथा जीवंत है। राष्ट्र और संस्कृति के पुनर्जीवन तथा नवीनीकरण के कार्य में गीता के सिद्धांत वास्तविक अर्थ में प्रभावशाली ढंग से सर्जनात्मक तत्त्व के रूप में कार्यरत हैं।

गीता से हमारी अपेक्षा और आवश्यकता क्या है? दैवी शिक्षक और मानवीय शिष्य कौन है? गीता के उपदेशों का क्या मर्म है? गीता का सर्वोच्च रहस्य क्या है? **'एसज ऑन द गीता'** इस तरह के अनेक प्रश्नों का उत्तर देती है।

9

दिव्य जीवन का संदेश

'एशिया और यूरोप की प्रतिभाओं में सबसे अधिक पूर्ण समन्वय जिस व्यक्तित्व में हुआ है, वे श्रीअरविंद हैं—इस अंतिम महान ऋषि ने अपने हाथों, अपनी दृढ़ तथा तत्पर मुट्ठी में रचनात्मक ऊर्जा के धनुष को धारण कर रखा है।'

—रोम्या रोलां

क्या हमारे जीवन का कोई गंभीर अर्थ है, उसे उपलब्ध करने के लिए इसका कोई उद्देश्य है ? यदि हाँ, तो वह उद्देश्य क्या है ? यदि मृत्यु अनिवार्य है तब जीवन की विषमताओं तथा समस्याओं के विरुद्ध हर तरह से उत्तेजनापूर्ण संघर्ष करने का हमारा क्या औचित्य है ? यदि ईश्वर कृपालु है और इस विश्व का सर्जक है तब उसका सृजन इतना अधिक अपूर्ण क्यों है ?

विश्वविद्यालय में अपनी पढ़ाई के दौरान व्यक्ति को इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल पाता। यह उत्तर न तो धन और शक्ति से और न ही ग़रीबी तथा त्याग से प्राप्त होता है। फिर भी, इन प्रश्नों को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता।

कई तरह से, बहुधा—क्या यह नहीं कहा गया है कि विश्व एक माया है। जो विश्व आज हमारे समक्ष है, संभवत: उसका अधिकांश अंश माया है, सत्य से दूर है। परंतु यदि सत्यानुभूति के लिए व्यक्ति को विश्व का परित्याग करना पड़े तो ईश्वर ने इसका सृजन ही क्यों किया ? महान आत्माएँ समय-समय पर यहाँ क्यों अवतरित होती हैं और विश्व को ज्योति की लौ दिखाने का प्रयास करती हैं ? क्या कोई व्यक्ति सचमुच उस विश्व का स्वयं कभी त्याग कर सकता है, जिससे वह उत्पन्न हुआ है।

बहुत पहले 'धर्म' ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया था : सभी प्रकार के आश्चर्यों में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है ? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया : दिन प्रतिदिन

अनेक व्यक्ति संसार छोड़कर मौत के घर जा रहे हैं। फिर भी, जीवित व्यक्ति इस भाँति सोचता और क्रियाशील रहता है मानो वह अमर हो। इससे अधिक आश्चर्यजनक और क्या हो सकता है ?

यह आश्चर्य युधिष्ठिर के कई हज़ार वर्ष बाद, आज भी दृढ़ता से चला जा रहा है—यह कम आश्चर्यजनक बात नहीं है। क्या ऐसा संभव नहीं हो सकता कि मनुष्य की चेतना के मर्म में छिप कर उसके अविनश्वर भविष्य का पूर्वाभास पड़ा है, वह अनजाने ही जीवन के प्रति अंध आकर्षण के रूप में अज्ञानता में अभिव्यक्त होता है ?

विश्व के दुःख और संताप की सीमा नहीं। फिर भी, मनुष्य प्रत्येक विध्वंस और प्रलय के बाद विश्व का पुनर्निर्माण करते हुए उससे चिपका हुआ है। इस अजेय शक्ति का क्या रहस्य है ? आमोद-प्रमोद का जीवन व्यतीत करना और शांति से निःशेष हो जाना, क्या मनुष्य की प्रेरणा का चरमोत्कर्ष हो सकता है ?

क्या हमारे आभ्यंतर की कोई वस्तु हमें अस्पष्ट रूप में ही सही, यह नहीं बताती कि विश्व जिस रूप में हमारे सामने है, वह स्वयं के लिए अंतिम शब्द नहीं हो सकता या कि सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं और शारीरिक व्याधियों से रहित सुखी जीवन भी मानवीय प्रेरणा का अंतिम शब्द नहीं हो सकता।

अपने महान् गद्य काव्य **'द लाइफ़ डिवाइन'** में श्रीअरविंद ने चेतना के विकास के ढंग तथा अंतिम सत्य के स्वभाव और जिस तरीक़े से यह जड़, प्राण और मन की त्रिविध सत्ता वाले विश्व से जुड़ा हुआ है, उसकी धैर्य पूर्ण परीक्षा करते हुए स्पष्ट किया है कि हम किस भाँति उस चरम-परम सत्य और इस विश्व अंतर्मन के बीच संबन्ध स्थापित करें। ऐसा करने के दौरान कोई भी जीवंत प्रश्न—शोध करने के लिए छोड़ नहीं दिया, जो मानव को आबद्ध किये हुए है।

हमारे विश्व—इस विश्व में हमारे जीवन को एक भविष्य में पैठना है, पर एक भिन्न प्रकार से। हमारे इसी सांसारिक अस्तित्व में एक रूपांतर हमारी प्रतीक्षा कर रहा है।

> 'इस तर्क में कोई निर्णायक मान्यता उपस्थित नहीं—चूँकि यह अज्ञानता का विश्व है अतः ऐसा रूपांतर स्वर्गातीत की यात्रा से ही आ सकता है या ऐसा रूपांतर हो ही नहीं सकता और चैत्य सत्ता की माँग अपने आप में अज्ञ है, उसके स्थान पर आत्मा का परमात्मा में विलय ही एकमात्र समाधान है।
>
> यह निष्कर्ष पूरी तरह से तभी मान्य हो सकता है यदि 'अज्ञान' ही विश्व की अभिव्यक्ति का संपूर्ण अर्थ, सार और शक्ति हो, या यदि स्वयं

विश्व प्रकृति में वह तत्त्व मौजूद न हो, जिससे एक ऐसी अज्ञ मनोवृत्ति का अतिक्रमण सामने आये, जो आज भी हमारी सत्ता पर भार डाले हुए है। परंतु अज्ञानता इस विश्व-प्रकृति का मात्र एक भाग है, यही उसका पूर्ण रूप नहीं है और न यह मौलिक शक्ति ही है, और न सर्जक है। अपने उच्चतर मूल में यह आत्म सीमाकारी 'ज्ञान' है और अपने निम्नतर मूल में यह विशुद्ध जड़—अचेतना से निकली है, यह एक दमित चेतना है, जो स्वयं को पाने, पुनः ऊपर उठाने तथा 'ज्ञान' को अभिव्यक्त करने के लिए संघर्ष-रत है, जो इसका सच्चा स्वभाव है; अस्तित्व की बुनियाद के रूप में विश्व मन में हमारी मनोमय सत्ता से ऊपर ऐसी श्रेणियाँ हैं, जो वैश्विक सत्यबोध के उपकरण हैं और इनके भीतर मनोमय सत्ता अवश्य विकसित हो सकती है, क्योंकि यह पहले से ही असाधारण स्थितियों में उनकी ओर उन्मुख हो जाता है अथवा उन्हें जाने या अधिकृत किए बिना ही उनसे प्राप्त करता रहता है—अन्तर्ज्ञान, आध्यात्मिक संकेत, दिव्य प्रकाश और आध्यात्मिक क्षमता। ये सभी श्रेणियाँ जानती हैं कि उनके ऊपर क्या है, इनमें सर्वोच्च श्रेणी अतिमन की ओर सीधी खुली हुई है, और उससे भी ऊपर की सत्यचेतना (ऋतम्) जागरूक है। इसके अतिरिक्त स्वयं विकासशील सत्ता में भी चेतना की वे महत्तर शक्तियाँ यहाँ हैं—मनोमय सत्य का समर्थन करती हुई, उसकी क्रियाओं के नीचे से, जो उन्हें ढक रखती हैं। यह 'अतिमन' तथा 'सत्य' की वे शक्तियाँ अपनी गोपनीय उपस्थिति से प्रकृति को धारण करती हैं; यहाँ तक कि मन का सत्य भी उन्हीं का परिणाम है, एक आह्लासित क्रिया-कलाप और आंशिक आकारों में एक प्रतिनिधित्व। अतः यह केवल स्वभाविक ही नहीं, अपितु अनिवार्य प्रतीत होता है कि 'अस्तित्व' की ये उच्चतर शक्तियाँ—यहाँ 'मन' में अपने को अभिव्यक्त करें, जैसे स्वयं 'मन' ने 'जीवन' में और जड़ में अपने को अभिव्यक्त किया है।

इच्छा निर्विवाद रूप से—जाग्रत या अजाग्रत रूप से—यह है कि मनुष्य वह उच्चतर जीवन प्राप्त करे। उन्होंने आगे कहा है :

"वर्तमान समय में मानव जाति विकासक्रम की एक संकटावस्था में से गुज़र रही है, जिसमें उसकी नियति का चुनाव, छिपा है; कारण, एक ऐसी स्थिति आ गयी है, जिसमें मनुष्य का मन कुछ दिशाओं में विपुल प्रगति कर चुका है, जबकि अन्य दिशाओं में वह अवरुद्ध और भ्रमित होकर खड़ा है और अब अपनी राह नहीं खोज पा रहा है। मनुष्य के सदा क्रियाशील रहनेवाले मन और प्राण-इच्छा ने बाह्य जीवन की एक इमारत खड़ी कर दी है और वह इमा-रत इतने बड़े आकार की है, इतनी

जटिल है कि वह दुःसाध्य हो गई है; वह इमारत उसने अपने मन, प्राण और शरीर के दावों और प्रेरणाओं के लिए बनायी है; वह एक संश्लिष्ट राजनैतिक, सामाजिक, शासनिक, आर्थिक, सांस्कृतिक यंत्र है; उसकी बौद्धिक, भावनात्मक, सौन्दर्यबोधी और भौतिक तुष्टि के लिए एक संगठित सामूहिक साधन है। मनुष्य ने जिस सभ्यता-तंत्र की रचना की है, वह इतना बड़ा बन गया है कि मनुष्य की सीमित मानसिक सामर्थ्य, समझ और उसकी और भी अधिक सीमित आध्यात्मिक तथा नैतिक सामर्थ्य उसका उपयोग और संचालन नहीं कर सकती; यह तंत्र मनुष्य के प्रमाद-पूर्ण अहं और उसकी क्षुधाओं का अत्यन्त खतरनाक सेवक हो गया है। कारण, उसकी चेतना की सतह पर अब तक कोई ऊर्ध्वदर्शी मन, ज्ञान की कोई संबोधिमय आत्मा नहीं आयी है, जो जीवन की इस मौलिक परिपूर्णता को उसका अतिक्रमण करनेवाली किसी वस्तु के मुक्त विकास के लिए, उपयुक्त परिस्थिति बना सके। जीवन साधनों की यह नयी परि-पूर्णता, मनुष्य को उसकी आर्थिक तथा भौतिक आवश्यकताओं के अनवरत और अतृप्त दबाव से छुड़ा सकने में अपनी सामर्थ्य के कारण, भौतिक जीवन से ऊपर उठे हुए अन्य और महत्तर लक्ष्यों के पूरे अनुसरण के लिये, एक उच्चतर सत्य शिव एवं सुन्दर के आविष्का कर लिये, एक ऐसे महत्तर तथा दिव्यतर आत्मा के आविष्कार के लिए मिलनेवाला सुयोग हो सकता है, जो जीवन में प्रविष्ट होगा और जीवन को सत्ता की एक उच्चतर पूर्णता के लिए व्यवहृत करेगा; परन्तु इसके बदले उसका उपयोग नयी आवश्यकताओं की संख्यावृद्धि और सामूहिक अहं के आक्रामक विस्तार के ही लिये किया जा रहा है। साथ ही, भौतिक विज्ञान ने विश्वशक्ति की बहुत सारी क्षमताओं को मनुष्य के हाथों में पकड़ा दिया है, और मानव जाति के जीवन को भौतिक रूप से एक कर दिया है, परन्तु इस विश्व शक्ति का उपभोक्ता तो एक तुच्छ, मानवीय, वैयक्तिक या सामुदायिक अहं ही होता है, जिसके ज्ञान-प्रकाश या गतिविधि में कुछ भी वैश्विक नहीं होता, कोई आंतरिक बोध या शक्ति नहीं होती, जो मानव-जगत् के इस स्थूल रूप में साथ खिंच आने में किसी सच्ची जीवन-एकता, मानसिक-एकता या आध्यात्मिक एकता की रचना करे। वहाँ तो बस परस्पर-विरोधी मानसिक भावों की विश्रृंखलता है, व्यक्ति और समुदाय के शारीरिक अभावों और आवश्यकताओं की प्रेरणाएँ हैं, प्राण के दावे और कामनाएँ हैं, अज्ञानमयी प्राण-प्रेरणा के अन्तर्वेग हैं, व्यक्तियों, वर्गों और राष्ट्रों की जीवन तुष्टि की क्षुधाएँ और पुकारें हैं; राजनैतिक, सामा-जिक और आर्थिक सर्व रोग नाशकों और धारणाओं का फला-फूला कुकुर-

मुत्ता है, नारों और रामवाणों की भीड़-भाड़ और रेल-पेल है, जिसके लिए मनुष्य अत्याचार करने और अत्याचार सहने को, मारने और मरने को तयार रहता है, उन्हें अपने हाथ में आये हुए विशाल और अति कराल साधनों से किसी-न किसी तरह आरोपित करने को तैयार रहता है, और ऐसा वह इस विश्वास से करता है कि यह उसका किसी आदर्श वस्तु तक पहुँचने का मार्ग है। मानवीय मन तथा प्राण का विकासक्रम अवश्य ही वर्द्धमान विश्व भाव की ओर ले जाएगा; परन्तु अहं और खंडकारक तथा विभाजक मन के आधार पर विश्व-सत्ता की ओर यह उन्मीलन केवल असंगत विचारों और अन्तर्वेगों का विशाल अंकुरण, विपुल शक्तियों और कामनाओं का उभार, एक विशालतर जीवन की असदृश और परस्पर-मिश्रित मानसिक, प्राणिक तथा भौतिक सामग्री का अस्तव्यस्त समूह ही रच सकता है—चूँकि वह सामाग्री 'अध्यात्म-सत्ता' के सर्जनशील और सामंजस्य पूर्ण प्रकाश द्वारा उद्भूत नही होगी, वह अवश्य ही विश्वव्याप्त अस्तव्यस्तता और विसंगति में निमग्न हो रही होगी, जिसमें से किसी महत्तर सामंजस्य पूर्ण जीवन कि निर्माण असम्भव होगा।

यदि पृथ्वी पर आध्यात्मिक जागरण 'जड़ता' में हमारे जन्म का छिपा हुआ सत्य है, यदि यह मूलतः चेतना का एक विकास है, जो प्रकृति में कार्य कर रहा है, तब मनुष्य, जैसा कि वह है, विकास की अन्तिम अवस्था नहीं हो सकता, वह आत्मा की एक अत्यंत अपूर्ण अभिव्यक्ति है, स्वयं मन एक अत्यंत सीमित रूप और उपकरण है; मन तो चेतना की केवल एक मध्य स्थिति है, मनोमय सत्ता केवल संक्रमणकालीन सत्ता है। तब मनुष्य यदि मनोमय अवस्था को अतिक्रम करने में अक्षम है तो उसे पीछे छोड़ दिया जाय्रेगा और अतिमन तथा अति मानव ही अभिव्यक्त होंगे और सृजन का नेतृत्व करेंगे। परंतु यदि उसका मन उसको अतिक्रम करने वाली शक्ति के प्रति अपना द्वार खोल देने में सक्षम है तो इस बात का कोई कारण नहीं दिखता कि स्वयं मनुष्य अतिमन, और अतिमानवता तक क्यों नहीं पहुँच सकता, या कम से-कम अपने मन, प्राण और शरीर को उस महत्तर अवस्था के विकासक्रम के लिए 'आत्मा' जो प्रकृति में अभिव्यक्त हो रही है, उसके लिए दे सकता है।'

संक्रांति की प्रक्रिया पहले से ही गतिशील है। श्रीअरविंद ने उस विकट और और जटिल संकट की व्याख्या की है, जिसे मनुष्य अपने अस्तित्व के सभी क्षेत्रों में अनुभव कर रहा है।

स्मरणातीत समय से मनुष्य की बहुविध अध्यात्मिक खोज की पूरी तरह छानबीन करते हुए श्रीअरविंद ने उनके अपरिहार्य चरमोत्कर्ष की

सत्यदृष्टि को तथा वस्तुओं में ईश्वरत्व की अंतिम आत्मप्रकाश की संभावना को रखा है। वर्णित रूपांतरण की प्रक्रिया हर कदम पर एक उद्भास का क्रम है। मन और अतिमन के बीच की खाई को पाटना होगा, बन्द राहें खोलनी होंगी, और आरोहण के मार्ग तैयार करने होंगे; जहाँ एक शून्यता व नीरवता छायी है। यह कार्य केवल त्रिविध रूपांतर के द्वारा ही संभव है। सर्वप्रथम चैत्य रूपांतर आवश्यक है, हमारी संपूर्ण प्रकृति को आत्मा के उपकरण स्वरूप बन जाना होगा, इसके बाद या इसके साथ आध्यात्मिक रूपान्तर आयेगा—उच्चतर, 'प्रकाश' 'ज्ञान' 'शक्ति' 'ऊर्जा' 'आनन्द' 'शुद्धता' का संपूर्ण सत्ता में अवतरण—यहाँ तक कि प्राण और शरीर की निम्नतम खोहों में भी, यहाँ तक कि हमारे अवचेतन के गहन अंधकार में भी। अंत में, अतिमानसिक रूपांतर को यहाँ आधारित होना चाहिए, तब फिर एक सर्वोच्च क्रिया के रूप में आरोहण को आना चाहिए, अतिमानसिक चेतना में और साथ ही, प्रति-मानसिक चेतना का अवरोहण हमारी संपूर्ण सत्ता में और प्रकृति में।

10

भविष्य की कविता और सौंदर्य-शास्त्र

'काव्य में शब्द की मौलिक शक्ति हमें दृष्टि देने के लिए होती है, न कि कुछ सोचने या अनुभूत करने में हमें प्रवृत्त कराने के लिए; विचार या अनुभूति दृष्टि से ही उत्पन्न होने चाहिए, या कहें दृष्टि में शामिल होने चाहिए, परंतु दृष्टि तो काव्यात्मक वाणी का प्रधान परिणाम और शक्ति है।'

—श्रीअरविंद : 'भविष्य की कविता' (**'द फ्यूचर पोएट्री)'**

श्रीअरविंद की काव्यात्मक दृष्टि तथा सौंदर्यात्मक विचारों में एक तरह की विलक्षणता है। संक्षेप में यदि कहें तो इस विलक्षणता के विभिन्न पहलुओं में सर्वप्रथम यह है कि श्रीअरविंद मनुष्य को विकसित हो रही सत्ता के रूप में देखते है, इस संभावना या विश्वास के साथ कि उसमें अभी तक जो क्षमताएँ असिद्ध पड़ी हैं, वे उभर रही हैं :

'मानव एक सूक्ष्म सेतु है,
विकसनशील आह्वान है, उसकी आत्मा
ईश्वर के जाज्वल्यमान पाटल की कोमल कली है।

—'द डम्ब इंकॉशिएण्ट'

और क्योंकि मैं जानता हूँ, हे ईश्वर !
वह दिन अवश्य आएगा
जब—मनुष्य कीचड़ के इस खेल से ऊपर अपने हाथों में
सूर्य और तारों को पकड़ते हुए उठेगा।
इस बाह्य प्रतीति को प्राचीन विधान और प्रक्रिया को
फिर से गढ़ेगा।'

—'द मेडिटेशन्स ऑफ़ मांडव्य'

निम्न पंक्तियों में मनुष्य के भविष्य की एक झलक मिलती है :

'एक सामर्थ्य —
जिसे कोई भी मानवेच्छा या शक्ति
उपलब्ध नहीं कर सकती,
एक ज्ञान—जो शाश्वतता में अवस्थित है,
एक आनन्द— जो हमारे संघर्ष और पीड़ा से परे का है,
वह इस पृथ्वी से त्रस्त जीव की नियति है।

—'इवॉल्यूशन'

इसलिए, कि आख़िरकार मनुष्य एक सांक्रांतिक जीव है। अपने विकास के दौर में रेंगते हुए वह आज इस वर्तमान स्थिति में आ पहुँचा है। परंतु वह समय संभवतः आ गया है, जब वह बाहर की ओर उछल कर उन्नततर नियति का आलिंगन करेगा, जो उसकी प्रतीक्षा में है। यद्यपि मनुष्य सम्प्रति एक विकासात्मक संकट के चक्रवात में फँसा हुआ है क्योंकि श्रीअरविंद ने बताया है कि एक शाश्वत पूर्णता निश्चय ही हमें अपनी ही मूर्ति में ढाल रही है। युगों से उस मूर्ति को सत्ता की वास्तविकता में अनूदित करने का हमारा रहस्य कभी तो हमारी आंतरिक प्रगति में फलीभूत होता है और कभी हमारी कलात्मक गतिविधियों के माध्यम से प्रकट होता है। कारण, जैसा कि श्रीअरविंद ने बताया है, सर्वोच्च कला वह है, जो विशिष्ट और विवेचनात्मक रूप का प्रेरणास्पद उपयोग करके आत्मा का द्वार खोल देती है, हमारे भीतर की सौंदर्यपरक अनुभूति यथार्थता की जागरूकता है और ऐसी ही क्रियाओं का औचित्य है, वह कुछ हद तक संभवतः अंतर्जात है और कुछ हद तक हमारे भीतर एवं चारों तरफ़ के सौंदर्य को पहचानने की परिष्कृत क्षमता है। 'सर्वोच्च सौंदर्य की प्राप्ति ईश्वर की प्राप्ति है।' यदि आध्यात्मिक अर्थ में कहें तो ईश्वर शाश्वत पूर्णता का पर्याय है, जो हमारी शाश्वत प्रेरणा है—और जिसे जाग्रत या अजाग्रत रूप में प्राप्त करना है।

चूंकि आजकल आमतौर पर सौंदर्यशास्त्र का संबंध मानसिक चिंतन के क्षेत्र तथा इस पर निर्भर करनेवाली वस्तुओं से है, और कभी-कभी, जैसा कि श्रीअरविंद ने चेतावनी दी है, यह सौंदर्यवाद की हद तक गिर सकता है या 'कला कला के लिए' सिद्धांत के किसी विचार में अपने को संकीर्ण या अतिशयोक्तिपूर्ण बना सकता है, परंतु मनुष्य के लिए यह अवश्य संभव होगा कि वह अपने मन से भी अधिक उच्चतर की स्थिति को— उदाहरण के लिए श्रीअरविंद की शब्दावली में 'अधिमन' की स्थिति को अपना सके, जहाँ सौंदर्य-दृष्टि किन्ही निमयों या कानूनों में सीमित नहीं है, जहाँ वह एक सर्वव्यापी और चिरंतन ऐसे सौंदर्य का दर्शन करती है, उसे अपनाती है और जो कुछ सीमित एवं विशिष्ट

है, उसे रूपांतरित करती है। चूंकि प्रत्येक व्यक्ति जीवन के समस्त सुख-दुख के बीच धीमी गति या तेजी से एक विकास कार्य कर रहा है, उसकी सौंदर्यानुभूति भी सक्रिय अनुभूतियों का क्षेत्र बन सकती है, जो शरीरिक, नैतिक और बौद्धिक सौंदर्य के रास्ते उस अनवरत निःशेष आध्यात्मिक सौंदर्य के परिमंडल तक पहुँचा देती है। एक पत्र में श्रीअरविंद ने यह विवेचित करते हुए कि उनके महाकाव्य **'सावित्री'** की रचना अधिमन के प्रभाव में हुई है, इस महा काव्य का मूल्य समझने के लिए आवश्यक दृष्टिकोण के बारे में हुए लिखा है :—

'एक आधारभूत और वैश्विक सौंदर्य दृष्टि की आवश्यकता है, इससे भी कुछ और अधिक गहन जो अभ्यंतर की गहराई से सुने, देखे, अनुभव करे और तल के पीछे जो कुछ है, उसका प्रत्युत्तर दे। तब एक और अधिक महान, विस्तृत और गंभीर सौंदर्य दृष्टि आवश्यक है, जो परात्पर को भी प्रत्युत्तर दे सकती है और प्राण, मन तथा इन्द्रिय बोध में परात्पर तथा अध्यात्म का जो कुछ सत्य उनमें प्रवेश करता है, उसका अनुभव करती है।'

जो दूसरा मुख्य तत्त्व श्रीअरविंद की सौंदर्य दृष्टि के क्षेत्र को इसके प्रचलित अर्थ से भिन्न करता है, वह विश्व के बारे में उनकी दृष्टि है :

'वे विश्व कहते हैं—इस
निर्दय, क्रूर, दैत्याकार निस्सहाय खिलौने को,
यह जो बार-बार चक्कर काटता है, चीखता है, रक्त टपकाता है,
पर रुक नहीं पाता, यह शिकार खंडित होकर भी जब तक—
अपने ही दृढ़ चक्रों पर जीवित है।

—**'द मेडिटेशन्स ऑफ़ मांडव्य'**

परन्तु अब भी —

'पृथ्वी— सर्वशक्तिशाली आत्माओं का वांछित स्थल है,
पृथ्वी वीरता पूर्ण भावनाओं की युद्धभूमि है,
एक भट्ठी है, जहाँ प्रधान शिल्पी अपने सृजन को आकार देता है।

—**'सावित्री'**

और जहाँ तक हम मानव जीवों का संबंध है—

'यह आपसी दुतरफ़ा इक ऋण है जो,
हमें बाँधता उस 'पुरुषोत्तम' से है,
बस हमें धारना प्रकृति है उसकी
जैसे उसने हमारी धारी है,
हम सब प्रभु के ही अपने आत्मज हैं,
और, उसके जैसा ही तो बनना है

उसके ही हम सब मानवी अंश हैं
हमे उसी दिव्यता में विकसना है।
जीवन एक विरोधाभास है यहाँ
जिसकी भगवान ही एक कुंजी है।

—'सावित्री'

इस प्रकार यह भौतिक विश्व या जीवन ईश्वर का विरोध नहीं है, प्रत्येक चीज़, कुछ अधिक उदात्त तथा महान वस्तु का प्रतीक भी है—उसकी त्वरित इन्द्रिय-गोचर क्रिया इस विश्व में कुछ भी हो।

काल की यात्रा के दौरान मानवता सर्वाधिक संकट के मोड़ पर पहुँच गई है। आज विश्व परिदृश्य में विरला ही कोई ऐसा कार्य संपन्न होता है, जिस पर सम्भ्रम के चिह्न न हों। मनुष्य की रचनात्मक क्रियाशीलता भी इसका अपवाद नहीं हैं। '**द फ्यूचर पोएट्री**' में श्रीअरविंद ने चेतावनी के स्वर में इस स्थिति की चर्चा की है :

'इस समय मानव मन दो क्षेत्रों की सीमाओं को पार करने में व्यस्त ह। यह सक्रिय और मुख्यतया भौतिक बौद्धिकवाद की अवधि से उभर रहा है और एक ऐसे प्राथमिक संबोधि ज्ञान की जिज्ञासा की ओर बढ़ रही ह, जहाँ बुद्धि अपनी निहित वृत्ति के वेग में अकस्मात्—मानो आशातीत सीमाओं पर सरक कर आ पहुँची है। इसलिए यहाँ अनेक दिशाओं में ऐसी अनिश्चिति है जिनमें कुछ केवल साँक्रान्तिक प्रयास के रूप में महत्त्व पूर्ण हैं और यदि वे अंतिम तथा निर्णायक गतिविधि बन पायें तो उनसे केवल एक चमकीले भ्रष्टाचार व पतन की स्थिति सामने आयेगी।

इस चमकीले भ्रटाचार व पतन के प्रचुर चिह्न समकालीन काव्य तथा निस्सन्देह, कुशाग्रबुद्धि व्यक्तियों के काव्य में मौजूद है, क्योंकि कुशाग्र बुद्धि ही पर्याप्त नहीं है। यदि आने वाले कल की कविता को—आज की कविता का मात्र अन्यथा प्रवर्द्धन नहीं होना है, (वस्तुतः वह ऐसी हो नहीं सकती—पश्चमुखी भले हो जाए) और इसके बदले उसे उल्लेखनीय उपलब्धियों के साथ अव्याहत बना रहना है तो उसे अपना क्षेत्र विस्तृत करना पड़ेगा। जब विश्व अपने आभ्यंतरिक विवरणों के साथ मनुष्य के समक्ष प्रस्तुत होता है तो जिस विश्व को हमने कभी बनाया ही नहीं, उसके सामने भयभीत और अपरिचित बने रहने की अनुभूति से काम नहीं चलेगा। मनुष्य के भौतिक दृष्टिकोण का विस्तार पर्याप्त रूप से उसकी चेतना के विस्तार के अनुरूप होना चाहिए। मनुष्य में आत्मा का द्वार खुलने और नए अंतर्दर्शन के प्रकट होने के साथ ही, अंधेरे में खोजने की प्रक्रिया का अंत हो सकता है : अंतर्दृष्टि उसी तरह कवि की

चारित्रिक शक्ति है, जिस तरह दार्शनिक के लिए विवेचनात्मक विचार आवश्यक वरदान होते हैं और वैज्ञानिक के लिए विश्लेषणात्मक पर्यवेक्षण स्वाभाविक प्रतिभा होती है।'

वह वाणी जिसके द्वारा ऐसी अंतर्दृष्टि व्यक्त होगी वह 'मान्त्रिक' होगी। 'मंत्र' को किसी फ़ार्मूले जैसी चीज़ या निश्चित पद्धति के साथ उलझाना नहीं चाहिए, न ही यह किसी दार्शनिक विषयवस्तु का रूप है। 'मंत्र' अंतरतम की आवाज़ है तथा वह उस सत्य की वाणी और लय की सर्वोच्च शक्ति में स्थित है। संभव तः यह कहा जा सकता है कि यह आन्तरिक स्वतंत्रता की महान चोटियों की अभिव्यक्ति के रूप में सामने आता है।

विचार और जीवन में मानव, प्रकृति और अस्तित्व की नवीन और महानतर आत्मदृष्टि का उडेला जाना आगामी काल की कविता में पूर्णता की आत्मा और उस मन के लिए प्रचुर विस्तार का मार्ग प्रशस्त करती हुई जीवन की विशाल व्यवस्था और प्रवाह है, जो साहित्य सृजन के महान युगों में सर्वोच्च रचनात्मक प्रेरणा के रूप में मौजूद रही है। गत शताब्दी में जिस तरह की प्रेरणा मौजूद थी, वैसी अभिनव बौद्धिक और सौन्दर्यात्मक प्रेरणा की खोज से सतह पर केवल क्षणभंगुर तरंगे पैदा होती हैं, और वह प्रथम कोटि के कृतित्व की सर्जना कम ही कर पाती हैं।

सच्ची उत्प्रेरणा अधिक पूर्ण गति से जीवन के विस्तृत क्षितिज, विचार-क्षेत्र के विस्तार, और आत्मा की उड़ान की ऊंचाइयों में प्रवेश करती है। जाति के मन में इस समय जो बदलाव आ रहा है; उसकी शुरूआत एक विशालतर वैश्विक सूक्ष्म दर्शन से हुई है, एक महानता और भावी की अनूभूति से, व्यक्ति और जाति की संभावना, मानवता की धारणा से, मनुष्य से मनुष्य की एकता तथा उसके निकट के संबंध और प्रकृति के जीवन के साथ उसके मन की एकता से हुई थी···अब भी बौद्धिक विचार यथेष्ट नहीं था क्यों कि इसे अपने वृहत्तर सत्य को आध्यात्मिक विचार में और अपने श्रेष्ठतर सांस्कृतिक क्षेत्र को अधिक कोमल संश्लिष्ट और सूक्ष्म चैत्यात्मक दृष्टि तथा अनुभव में पाना था। इसी की तैयारी हाल के और समसामयिक कवियों द्वारा की गयी है। फिर इस गहनतर विचार और अनुभूति की अभिव्यंजना तब तक पर्याप्त नहीं होती, जब तक कि आध्यात्मिक विचार पूर्ण आध्यात्मिक साक्षात्कार में प्रविष्ट नहीं कर चुका होता और उसने केवल व्यष्टिगत बुद्धि और चैत्यात्मक मन एवं कल्पना को प्रभावित नहीं किया होता है वरन् जाति के सामान्य बोध और भावना में प्रविष्ट हो चुका होता है, और समस्त

विस्तार तथा जीवन को अपनी प्रतिमा में पुनर्गठित करने के लिए उन पर अधिकार जमा चुका होता है । यह वही आध्यात्मिक साक्षात्कार है, जिसे भावी कविता को उसकी अंत र्दृष्टि का चक्षु, उसके कलाशास्त्रीय सौंदर्य का आकार व उसे उद्भासी भाषा देकर उसे आगे बढ़ाने में सहायता करना है, और यह जीवन का वही महतीकरण है, जिसको इसे अपना विषय वस्तु बनाना है ।

प्रभाव में एक विशालतर वैश्विक अंतदर्शन जगत् और मनुष्य में देवत्व का साक्षात्कार, उसकी दिव्य संभावनाओं के साथ-ही-साथ वह जो कुछ भी है, उसमें अभिव्यक्त होनेवाली शक्ति की महत्ता का साक्षात्कार, उसके विचार, भावना और इन्द्रियबोध एवं कर्म का आध्यात्मीकृत रूप से उन्नयन, अधिक विकसित चैत्यात्मक मन और हृदय, उसकी अपनी प्रकृति तथा विश्व के आशय के भीतर एक गहनतर और सत्यतर अन्तदृष्टि; दिव्यतर संभावनाओं और अधिक आध्यात्मिक मूल्यों का उसके उद्देश्य एवं बनावट में आवाहन—यही मानवता के प्रति आह्वान है, और उसका संभावित है, भविष्य है, जिसे धीरे-धीरे उन्मीलित होती हुई और अब अधिक स्पष्टता से उद्घाटित विश्व की आत्मा उसके आमने सामने प्रस्तुत कर रही है। जो राष्ट्र इन चीजों को अपने जीवन तथा संस्कृति में सबसे अधिक समाहित करेंगे और वास्तविक बनायेंगे, वे आने वाली ऊषा के राष्ट्र हैं और जो कवि, चाहे वे जिस भाषा के हों और चाहे जिस जाति के हों, इस अंतर्दर्शन के साथ सबसे अधिक पूर्णता से देखेंगे और इसकी वाणी की प्रेरणा के साथ सबसे अधिक पूर्णता से बोलेंगे, ये वे ही हैं, जो भावी कविता के स्रष्टा होंगे ।'

11

मानव-नियति का महाकाव्य

'सावित्री' श्रीअरविंद की अंतर्दृष्टि की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है।''

—श्रीमाँ

काल की यात्रा के साथ-साथ हमारे युग का एक महान् विरोधाभास अधिक उद्दीप्त होता जाएगा : बहुविध पीड़ाओं से रक्तरंजित समकालीन रचनात्मकता के बीच आगामी स्वर्णिम कल का पूर्ण अंतर्दर्शन प्रस्फुटित हो उठा है, हताशा और क्रोध के क्रंदन से ध्वनित व प्रतिध्वनित होती हुई 'वर्तमान' के छायाभासी दुर्ग की अंधकारमय भूलभुलैया के कहीं पार्श्व में एक अद्भुत भैरव राग — नये प्रभात का स्वागत करता हुआ गूँज उठेगा।

समकालीन साहित्य में जीवनी-शक्ति से कम्पायमान, व्यथापूर्ण क्रंदन की प्रामाणिकता को चुनौती नहीं दी जा सकती। ये निश्चय ही सर्वाधिक स्वाभाविक अनुभव की वास्तविकता संप्रेषित करते हैं। परंतु श्रीअरविंद के महाकाव्य 'सावित्री' के अंतर्दर्शन तथा पूर्ण आश्वासन को भी चुनौती नहीं दी जा सकती। वे भी चेतना की अपूर्व साहस यात्रा के आलेख हैं।

'सावित्री' के कवि ने सांसारिक व्यथाओं को भ्रम कह कर अस्वीकृत नहीं किया है :

'व्याकुल और असंतुष्ट यह महाविश्व
अज्ञानता का बसेरा, संताप का केन्द्र है :
वहाँ कामनाओं के खेमे गड़े हैं,
पीड़ा के मुख्यालय हैं।

परंतु इन वास्तविकताओं के पीछे भी एक वास्तविकता है :

फिर भी वहाँ प्रकाश है, वह प्रकृति के द्वार पर खड़ा है :
उसके हाथों में मशाल है—पथिकों के मार्गदर्शन हेतु
वह प्रतीक्षारत है—
हमारे अंतरतम के कोटरों में
प्रदीप्त होने के लिए

निस्सन्देह, इस प्रकाश का अनुभव रहस्यात्मक है, श्रीअरविंद रहस्योन्मेषी आध्यात्मिक कवि हैं। परन्तु रहस्यात्मक अनुभव भी किसी विशेष क्षेत्र की वास्तविकता होते हैं । अपने नाम के अनुकूल अधिकांश कविताओं में रहस्य के कुछ तत्त्व अवश्य उपस्थित रहते हैं, परंतु उनके कवियों के लिए साधारणतया यह आवश्यक नहीं कि उस रहस्यात्मकता में विश्वास करने की उनमें प्रवृत्ति हो, अपनी कविता में एक गोपनीय जादुई आकर्षण आयात करने की अपेक्षा उनके पास करने के लिए कुछ और नहीं होता। परंतु श्रीअरविंद के संदर्भ में स्थिति भिन्न थी। उनका विश्वास था कि एक दिन उन रहस्यमयी चोटियों की भव्यता मनुष्य के जीवन में समाहित हो जायेगी, क्योंकि मनुष्य, जैसा कि वह आज है, एक सांक्रांतिक जीव मात्र है ।

> वह एक महत्ता बीच उठ गया है, पीछे एक असंतोष लग गया है,
> वह उस 'अदृश्य' में आज जग गया है,
> वह एक अतृप्त अन्वेषक है,
> जिसको सब कुछ यहां सीखते ही रहना है,
> जीवन के सतही कार्यों को
> उसने तो अपने समाप्त ही कर डाला है।
> पर सत्ता के गुप्त गुह्य क्षेत्रों की छानबीन करना शेष रह गया है।'
>
> —**'सावित्री'** II, 4

अपनी महान गद्य रचना **'द लाइफ़ डिवाइन'** (दिव्य जीवन) में श्रीअरविंद ने कहा है :

मानव के अपने प्रबुद्ध विचारों के प्रारम्भ में जो लोकोत्तर कामना जगी थी, वही उसकी अनिवार्य और अन्तिम कामना भी प्रतीत होती है—क्योंकि वह संशय की लम्बी से लम्बी अवधियों के बाद भी बची रही है, और बार-बार निष्कासित किये जाने पर भी लौट आती है, यही उसकी उच्चतम उड़ान भी है, जहाँ उसके विचार पहुँच सकते हैं । यह अभिव्यक्त होती है —भगवान के पूर्वाभास में, पूर्णता के आवेग में, विशुद्ध सत्य व शुद्ध आनन्द की खोज में और गुप्त अमृतत्व के बोध में। ज्ञान की प्राचीन ऊषाएँ हमारे लिए अनवरत स्पृहा के प्रमाण छोड़ गई हैं।

आज हम देखते हैं कि मानवता बाह्य प्रकृति का विजयी विश्लेषण करने से अघा तो गई है किन्तु उसे सन्तुष्टि नहीं प्राप्त हुई और अब वह अपनी उसी आदिम कामना की ओर वापस जाने की तैयारी कर रही है ।

प्रज्ञा का प्रारंभिक सूत्र ही अंतिम सूत्र लगता है, उसे ईश्वर, प्रकाश, स्वतंत्रता तथा अमरत्व चाहिए ।

जो चीज़ मनुष्य को उसकी सतत् प्रेरणाओं की पूर्ति में हर कदम पर

बाधक है, वह है अज्ञानता—अचेतनता। मृत्यु भी जो मनुष्य की संत्रस्त आत्मा के लिए रात्रि का काला झूठ है, और वस्तुओं का अवास्तविक, अनिवाय अंत है, वह भी पोषण करती है और जीवन पर प्रभुत्व रखनेवाले तथा क़हर ढानेवाले इस अभागे तत्त्व पर निर्भर रहती है।

इस विकट त्रास, मृत्यु का केवल एक ही सच्चा विरोधी है—प्रेम।

'प्रेम की आँख,
मृत्यु की रात्रि में नक्षत्रों की तरह घूरती रहती हैं—
प्रेम के नंगे पैर लाँघ जाते हैं कठोर लोकों को।'

मृत्यु के प्रति प्रेम का यह अविरत विरोध और मृत्यु के ऊपर प्रेम की संभाव्य वरिष्ठता को गुप्त रूप से **'महाभारत'** की अमर कथाओं में से एक में रखा गया है : राजकुमारी सावित्री अपने पति सत्यवान के, जिसे उसने अपने विवाह के लिए चुना था, निर्वासित परिवार के साथ जंगल में रहती थी। उसे अपने पति की मृत्यु का पूर्वज्ञान था। मृत्यु होने वाले दिन वह पति के साथ वन गयी। पूर्वनिश्चित क्षण आने पर सत्यवान गिर पड़ा और उसकी मृत्यु हो गयी। परंतु सावित्री सत्यवान के लिए विशुद्ध प्रेम से परिपूर्ण हृदयवाली केवल एक समर्पित पत्नी ही नहीं थी, अपितु वह अभूतपूर्व आध्यात्मिक उपलब्धियों की धनी महिला भी थी। अपनी गुह्य दृष्टि से वह यह देखने में समर्थ थी कि मृत्यु के देवता यम, कब वहाँ प्रकट हुए और सत्यवान की आत्मा पर अपना अधिकार कर लिया। सावित्री चुपचाप, किन्तु दृढ़ कदमों से यम के पीछे चल पड़ी। यम ने उससे अनुरोध किया कि वह लौट जाये। परंतु उसने ऐसा नहीं किया। सावित्री के प्रेम की शक्ति से चकित होकर तथा इसी के साथ उससे पीछा छुड़ाने की उत्कट इच्छा से यम ने उसे कई वरदान दिए और उन्ही वरदानों के क्रम में सावित्री ने एक मनोवैज्ञानिक क्षण में उनसे यह भी स्वीकार कराया कि उसे सत्यवान से सौ पुत्रों की प्राप्ति हो।

परंतु यदि सत्यवान जीवित नहीं, तो ऐसा किस तरह हो सकता था। इस प्रकार पराजित होकर यम ने सत्यवान को पुनः जीवित कर दिया।

श्रीअरविंद के हाथों में यह आख्यान एक विशाल अर्थगर्भित प्रतीक में रूपांतरित हो गया है। मनुष्य बहुत ही कमज़ोर, वस्तुतः एक अदना जीव है, मृत्यु के त्रास को चुनौती देने के संदर्भ में वह जिसे प्रेम समझता है, वह प्रेम बहुत विकृत तथा अपर्याप्त है। परंतु सावित्री सुदूर अतीत में नियोजित, पर मानवता के साथ बढ़ती हुई, कालातीत होकर भी काल का परिधान ओढ़े हुए, शाश्वत सावित्री है, जिसकी साधना जगती के पुत्रों की ओर से एक दिन उस दिव्य प्रेम के प्रवाह में प्रवेश करेगी, जो अज्ञता के सर्प का अंतिम मारक है।

"जैसे-जैसे हम सर्ग-प्रति-सर्ग अश्वपति की कथा के साथ यह महाकाव्य पढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे हम नीचे की ओर अंधकारपूर्ण लोकों और ऊपर की ओर ज्योतिर्मान लोकों के पथिक बनते जाते हैं। हम सावित्री के साथ मन, प्राण और आत्मा के अंतर्प्रदेशों में प्रवेश करते हैं तथा हम 'शक्ति', 'दुःख' और 'प्रकाश' की त्रिविध आत्मशक्तियों का साक्षात्कार करते हैं, और जब अंत में, आत्मा के स्वप्नसाम्राज्य में सावित्री और मृत्यु के बीच मेल हो जाता है; तब हम चिर रात्रि, द्विपक्षीय धुँधलके और स्थिरस्थायी दिवस के अंतराल में सर्वत्र संघर्ष का प्रत्यावर्तन देखते हैं। और जब सब कुछ शेष हो गया होता है, सावित्री और सत्यवान रात्रि-शयन हेतु चले जाते हैं तब वहाँ एक दूसरी तथा 'एक महान ऊषा' का अवश्यम्भावी उदय होता है।" (डा. के. आर. श्री निवास आयंगार)

इस महाकाव्य के किसी भी समर्पित पाठक के लिए सावित्री का व्यक्तित्व शोध का एक अकथनीय आनन्द होगा। उसकी आत्मा मनुष्य के साथ-साथ उसी तरह है, जिस तरह दुःखों की माँ हैं:

'जग को वह निज पीड़ा की ही काया के रूप में धारण करके,
सप्त शोक 'माता' सप्त प्रहारों को तन पर धारे थी।
जो उसके रक्त-स्रवित उर को कोंच रहे थे:
और शोक पूर्ण सुन्दरता उनके आनन के ऊपर छायी थी,
और आँसुओं के चिरंतन दाग से उसकी आँखें विवर्ण थीं।
उसका हृदय विदीर्ण था, विश्व की पीड़ा से।

—**'सावित्री'**, vii, 4

परंतु 'प्रकाश' की 'जननी' के रूप में वह वहाँ भी हैं:

'उसकी आँखों में स्वर्ग ने अपनी प्रदीप्ति को उधार दिया था,
शशिकिरणों के समान उसके चरणों की आभा थी,
दीप्त सूर्यसदृश उनका आनन था,
उसकी स्मिति इक मृत विदीर्ण अंतर में
फिर जीने और शांति के हाथों का
अनुभव पाने की प्रेरणा उड़ेल रही थी।

—**'सावित्री'**, iii, 4

महाकाव्य में नायक के असाधारण साहस का उल्लेख रहता है। विश्व के संपूर्ण महाकाव्यों में **'सावित्री'** इस अर्थ में अप्रतिम है कि इसका 'नायक' एक नारी है।

वह प्रस्तुत है यहाँ, अंधकार की शक्तियों के कार्य में,
'देश-काल' के दोषों तथा अशुभों को समाप्त करने के लिए,

अज्ञ विश्व की त्रासदी परिवर्तित करने के लिए ईश्वरीय सुख की दिव्य कामदी में,
और ईश्वरीय आनन्द के उल्लास तथा ह्रास में ।

—'**सावित्री**,' iii, 2

विश्व के महान महाकाव्यों में जिस तरह के बाह्य संघर्ष का चित्रण होता है (ऐसे संघर्षों में निश्चित रूप से हमेशा एक रहस्यात्मक पहलू रहता है और एक समानता होती है।) **सावित्री** में उससे अलग हट कर यह संघर्ष मूलत: चेतना के क्षेत्र का संघर्ष है । अपनी '**फ्यूचर पोएट्री**' रचना में श्रीअरविंद ने बताया है ।

'महाकाव्य— मनुष्य या विश्व या देवताओं के महान काव्यात्मक आख्यान में यह आवश्यक नहीं कि वह निश्चित तौर पर वाह्य क्रियाओं का सशक्त प्रस्तुतीकरण हो। ईश्वरीय शक्तियों द्वारा रोम का निर्माण, महान भारतीय काव्यकृतियों में प्रस्तुत शुभ-अशुभ के सिद्धांतों का संघर्ष, शताब्दियों का दिग्दर्शन, तथा हमारे अस्तित्व से परे तीन लोकों से होकर द्रष्टा की यात्रा महाकाव्य के रचनाकार की कल्पना के लिए उतनी ही सटीक विषयवस्तुएँ हैं, जितनी कि प्राथमिक काल के युद्ध एवं साहसपूर्ण कार्य । बहुत आभ्यांतरिक रीति से देखे हुए आतमा के महाकाव्य जैसे कि वे संबोधि चेतना से लिखे काव्य मे पाए जायेंगे, वे उसका उन्नतम संभाव्य विषय हैं और वह यही उत्कृष्ट कोटि का काव्य है; जिसकी हम भविष्य की किसी गंभीर और शक्तिशाली वाणी से आशा करते हैं। यह यथार्थ में उन्नततम उड़ान का संगीत हो सकता है, जो अपनी उन्नततम चोटी से, और विजन के विशालतम क्षेत्रों से मानव-आत्मा की नियति को खोलेगा और मानव तथा विश्व में उस दिव्य उपस्थिति को और नए मार्गों को तथा उस चरम उद्देश्य को बतायेगा ।'

23,813 पंक्तियों के मुक्त छंद में लिखी गयी अंग्रेज़ी भाषा की सर्वाधिक लंबी कविता '**सावित्री**'—अपने सूक्ष्मतम तथा महत्त्वपूर्ण अर्थ में भारतीय है । इसकी कथा अतीत में भारत की वीरगाथात्मक विरासत से ली गयी है। अतीत में भारत के दो महान महाकाव्यों, '**रामायण**' और '**महाभारत**' की तरह इसकी आध्यात्मिकता पृथ्वी के साथ संग्रथित है । 'महाभारत' में कुरुक्षेत्र के युद्ध के समय जब अर्जुन के मन पर वैराग्य के आवेश ने आक्रमण किया, तब श्रीकृष्ण उन्हें कर्तव्य की ओर पुन: लौटने की प्रेरणा देते हैं, क्योंकि, यह कर्म से विमुखता नहीं, अपितु आसक्ति रहित कर्म है । पृथ्वी पर एक उन्नत योजना की चरितार्थता के लिए कर्म—एक यंत्र की तरह—एक सच्चे ज्ञानी व्यक्ति का मार्ग है । यहाँ एक ऐसी योजना है—एक दिव्य योजना—जो

अपने को पृथ्वी पर खोल रही है—श्रीअरविंद उसके लिए दृष्टिप्रदान कर रहे हैं और इस योजना के अनुसार मनुष्य को अपना अतिक्रमण अवश्य करना है जिससे कि :

'इस मर्त्य जगत् में फिर
एक सशक्ततर उच्च जाति का अपना निवास होगा।
और 'प्रकृति' की प्रदीप्त सुशिखाओं पर और आत्मा के धरातल पर
वह अतिमानव सारे ही जीवन का अधिराजा बन राज करेगा,
पृथ्वी को दिवसंगी बनवायेगा, और उसको जोड़ीदार बनायेगा।'

'सावित्री'xi, 1

श्रीअरविंद का यह महाकाव्य संपूर्ण राष्ट्रीय ढाँचे को अतिक्रमित करता है, यह आलिंगन करता है उस रहस्य का—जो सृष्टि है, और मनुष्य है। ऐसा नहीं कि ये अतिक्रमणकारी तत्त्व अन्य महाकाव्यों में नहीं हैं, लेकिन **'सावित्री'** में मनुष्य के भाग्य का अंतर्दर्शन प्रधान रूप से महत्त्वपूर्ण है।

हम श्री के. डी. सेथना के विचारों को रख कर इस चर्चा का समापन करेंगे, जिन्हें इस महाकाव्य की रचना होने के दौरान **'सावित्री'** के महत्त्व को लेकर श्रीअरविंद से अन्तरंग पत्राचार करने का अवसर मिला था :—

इस प्रकार इस काव्य में मनुष्य का भूमिजात हृदय अनंत के लिए पीड़ित केवल अपनी सान्तता में ही नहीं, बल्कि अभिव्यक्ति की परिपूर्णता में भी दिखाया गया है। यह परिपूर्णता यद्यपि गुह्य प्रकाश से घनीभूत है परन्तु बार-बार ऐसी शैली में चित्रित है, जो हमारे लिए सरल है और जो शाश्वत कोकाल की गतिधारा में विराट प्रांजलता से उपस्थित करती है क्योंकि श्रीअरविंद ने इस महाकाव्य की रचना न तो प्रच्छन्नता में उलझे किसी हठीले दृढ़प्रतिज्ञ अतियथार्थवादी की और न चमकते हुए किसी दुर्ग्राह्य सिद्धान्त के समर्थक दृढ़ प्रतीकवादी की प्रवृत्ति के आधार पर ही की थी। उनके भीतर कवि की पृष्ठभूमि में योग का स्वामी है, जिसका कार्य जाग्रत करना है, उलझाना नहीं। वे भारत में आध्यात्मिकता के पुरातन अतीत में जमी अपनी जड़ों के साथ अब भी आधुनिकों में आधुनिक थे—एक नवीन गूढ़प्रगति के द्रष्टा, चेतना में एक सामूहिक विकास—मन से अतिमन तक, भगवान की ओर विकासोन्मुख एक पूरा संसार। केवल राजनीतिक नहीं बल्कि नश्वरता की अज्ञानता को भी निर्मल करनेवाले थे। सावित्री को उन्होंने जिन की बेड़ियों शब्दों म व्यक्त किया है, तदनुसार उनका उद्देश्य मनुष्य को मुक्त करते हुए

एक दिव्य लोकतंत्र की प्रतिष्ठा करने का था।

'एक निःसंग स्वतंत्रता संतुष्ट नहीं कर सकती
उस हृदय को, जो प्रत्येक हृदय के साथ एकाकार हो गया है
मैं एक प्रेरणारत विश्व की प्रतिनिधि हूँ,
मैं अपनी आत्मा की स्वतंत्रता चाहती हूँ
सबकी स्वतंत्रता के लिए।'

परिशिष्ट

देवत्व

संकट के खुरों के नृत्य की आड़ में बैठा मैं,
उस कोलाहल पूर्ण सड़क में, जो प्रतीत हुई भविष्यवादी की सनक,
और सहसा महसूस हुआ उसके शरीर ने, प्रकृति कुंजों से निकल,
मुझमें ही मुझे आच्छादित कर लिया
मेरे मस्तक पर एक विराट मस्तक दिख पड़ा,
जिसके मुख-मंडल पर अमरत्व की शांति विराज रही थी,
उसकी सर्वशक्तिमान दृष्टि उस समस्त दृश्यावली को साधे है—
अपनी प्रभुता के विस्तृत वृत्त में ।
उसके केश मिश्रित थे धूप और हवा में
यह विश्व उस विराट के हृदय में था और वह विराट मैं ही था,
मैं अपने में संजोये था अनंत सत्ता की शांति को, और
उस 'एकम्' की शक्ति को जिसके तत्त्व का नाश नहीं हो सकता ।
वह क्षण बीत गया और सब कुछ पूर्ववत् था
केवल वह मरणातीत स्मृति मुझमें शेष रह गई ।

प्रस्तर देवी

देवताओं की एक नगरी के एक छोटे-से मंदिर में
प्रस्तर मूर्ति के अवयवों से उस देवत्व ने मुझे देखा,
एक जीवंत 'उपस्थिति, मरणातीत और दिव्य,
एक विराट 'रूप', जो अपने में समस्त अनंतता समेटे हुए था ।
वह महा जगज्जननी और उसकी सशक्त इच्छा,
पृथ्वी की अगाध निद्रा में निवस गई,
वाचाविहीन, सर्वशक्तिमान, अबोधगम्य

मूक मरुभूमि में, आकाश में और समुद्र में।
अब वह मन से आवृत्त होकर है निवास करती,
एक शब्द भी नहीं बोलती
वाचा विहीन, अबोधगम्य, सर्वज्ञ
छिपी रहेगी, जब तक हमारी आत्मा, देखती नहीं, सुनती नहीं,
उसके विचित्र रूपायण रहस्य को।
एकरूप उस आराधक में, और अचल प्रतिमा में
एक सौंदर्य और रहस्य,
जिसे मानव शरीर व पाहन कर सकते हैं धारण।

भागवत मुहूर्त

ऐसी घड़ियाँ आती हैं, जब स्वयं परमात्मा मनुष्य के बीच विचरण करते हैं और हमारी सत्ता के समुद्र पर सर्वत्र परम प्रभु का श्वास-प्रश्वास फैल जाता है, दूसरी ऐसी घड़ियाँ होती हैं, जब वे वापस लौट जाते है और मनुष्य अपने ही अहंकार की शक्ति या अशक्ति से काम करने के लिये छोड़ दिये जाते हैं। पहला वह काल है जब कि थोड़ा-सा प्रयत्न भी महान परिणाम उत्पन्न करता है और भाग्य को पलट देता है, दूसरा वह काल होता है, जब थोड़ा-सा परिणाम उत्पन्न करने के लिये बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। यह सच है कि दूसरा पहले के लिये तैयारी कर सकता है, वह स्वर्ग की ओर जानेवाला यज्ञ का नन्हा-सा धूम-वलय हो सकता है, जो भागवत अनुग्रह की वर्षा को नीचे बुला लाता है।

अभागा है वह मनुष्य या राष्ट्र, जो भागवत मुहूर्त के आने पर सोया पड़ा हो या उसका उपयोग करने के लिये तैयार न हो, क्योंकि उसने उसके स्वागत के लिये दीप सँजोकर नहीं रखा है और उसकी पुकार के प्रति अपने कान बंदकर लिये हैं। पर कहीं अधिक अभागे हैं वे लोग, जो सशक्त और तैयार होते हुए भी शक्ति का अपव्यय करते या उस मुहूर्त का दुरुपयोग करते है; उनके भाग्य में लिखी है, असाध्य क्षति या महती विनष्टि।

इस भागवत मुहूर्त्त में धो डालो अपनी अंतरात्मा से समस्त आत्म-प्रवंचना, ढोंग और थोथी आत्म-प्रशंसा की वृत्ति को, ताकि तुम सीधे अपने अंत:पुरुष को देख सको और उस वाणी को सुन सको, जो उसे पुकारती है। तुम्हारी प्रकृति की सारी कुटिलता, जो पहले तुम्हें प्रभु की दृष्टि और आदर्श की ज्योति

से बचाये हुए थी, अब तुम्हारे रक्षा-कवच में एक छेद बन जायेगा और प्रहारों को निमंत्रित करेगा। यदि तुम अभी जीत भी जाओ तो यह तुम्हारे लिये और भी बुरा होगा, क्योंकि प्रहर तो बाद में आयेगा ही और वह तुम्हारी विजय के बावजूद तुम्हें नीचे पटक ही देगा। किन्तु शुद्ध होकर झाड़ फेंको समस्त भय; क्योंकि यह मुहूर्त प्रायः भयंकर होता है, यह एक अग्निकांड, एक बवंडर और एक तूफ़ान होता है, यह महारुद्र का प्रलयंकर तांडव नृत्य होता है, परन्तु जो इसमें अपने उद्देश्य की सच्चाई के बल पर खड़ा रह सकता है, बस वही रहेगा। यदि वह गिर भी जाय तो वह फिर खड़ा होगा, यदि वह वायु के पंखों पर उड़ा जाता हुआ प्रतीत हो तो भी वह अवश्य वापस आयेगा। सांसारिक बुद्धिमत्ता को अत्यंत निकट आकर अपने कानों में फुसफुसाने मत दो, क्योंकि यह अप्रत्याशित की घड़ी है।

स्वतंत्रता दिवस के लिए संदेश

15 अगस्त, 1947 स्वतंत्र भारत का जन्म दिन है। यह दिन उसके लिए प्राचीन युग की समाप्ति तथा नये युग के सूत्रपात की निशानी है। परंतु एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में हम अपने जीवन और क्रियाओं से उस दिन को मानवता के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भविष्य तथा संपूर्ण विश्व के लिए एक नये युग के शुभारंभ का महत्त्वपूर्ण दिन बना सकते हैं।

15 अगस्त मेरा जन्म दिन है और स्वभावतः ही यह मेरे लिए सुखद है कि इस दिन को इतना अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ। मैं इस अनुरूपता को आकस्मिक घटना नहीं मानता बल्कि इसे मैं एक दिव्य शक्ति का अनुग्रह और प्रतीक मानता हूँ, जो उन कार्यों को पूरा करने में मेरा पथ प्रदर्शन करती है जिनसे मैंने जीवन की शुरूआत की और जो इनकी पूर्ण सिद्धि का प्रारंभ था। वस्तुतः इस दिन मैं प्रायः उन सभी सांसारिक गतिविधियों को देख सकता हूँ, जिन्हें मैं अपने जीवन में पूरा होने की आशा करता था, हालाँकि तब वे अपने फलन या उपलब्धियों तक पहुँचने के समय एक असंभव स्वप्न के समान प्रतीत होती थीं। इन सभी गतिविधियों में स्वतंत्र भारत अच्छी तरह एक बड़ी भूमिका ग्रहण करके प्रमुख स्थान प्राप्त कर सकता है।

इनमें प्रथम स्वप्न एक क्रांतिकारी आंदोलन का था, जो स्वतंत्र और संगठित भारत की रचना करेगा। आज भारत स्वतंत्र है परंतु उसमें एकता नहीं आ पाई

है। एक समय पूरी तरह ऐसा प्रतीत हुआ था कि स्वतंत्रता की इसी प्रक्रिया में हम अलग-अलग राज्यों की विश्रृंखल स्थिति के बीच पुनः गिर पड़ेंगे, जहाँ हम अंग्रेज़ों की विजय से पहले थे। परंतु सौभाग्यवश अब यह संभव प्रतीत होता है कि यह खतरा टल जायेगा और एक विशाल तथा शक्तिशाली संघ, हालाँकि पूर्ण नहीं, स्थापित हो जाएगा। संविधान सभा की बुद्धिमत्तापूर्ण सशक्त नीति ने ही यह संभव बना दिया है कि त्रस्त वर्गों की समस्या का बिना विच्छेद या फूट के समाधान हो जाएगा। परंतु हिंदुओं और मुसलमानों के रूप में प्राचीन सांप्रदायिक वर्गीकरण अब देश के स्थायी राजनीतिक विभाजन के रूप में सुदृढ़ होता प्रतीत हो रहा है। यह आशा की जानी चाहिए कि इस निश्चित तथ्य को हमेशा के लिए निश्चित या एक अस्थायी उपाय से कुछ अधिक के रूप में स्वीकार नहीं किया जाएगा। क्योंकि यदि यह स्थिति जारी रहती है तो भारत गंभीर रूप से कमज़ोर या विकलांग भी हो जाएगा। हमेशा जनता में फूट, एक और आक्रमण या विदेशियों की विजय की भी आशंका बनी रहेगी। भारत का आंतरिक विकास और प्रगति बाधित हो सकती है, अन्य राष्ट्रों के बीच उसकी स्थिति कमज़ोर हो जायेगी, उसका भविष्य विकृत या निराशामय भी हो जाएगा। ऐसा कदापि न होने पाए, विभाजन कदापि न हो। हमें आशा करनी चाहिए कि केवल शांति और मैत्री की ही नहीं बल्कि सामूहिक कार्रवाइयों की तीव्र आवश्यकता महसूस करके, सामूहिक कार्रवाइयों के व्यवहार से और इस उद्देश्य को पूरा करने के उपायों की रचना करने से अपने आप ही विभाजन की स्थिति आ सकती है। इसी भाँति अंत में एकता किसी भी रूप में स्थापित हो जाएगी— एकता के सटीक रूप का कोई उपयोगितावादी महत्त्व भले हो, आधार-भूत महत्त्व नहीं है। परंतु किसी भी उपाय से, किसी भी हालत में विभाजन कदापि न हो, एकता अवश्य स्थापित होगी—क्योंकि यह भारत के भविष्य की महानता के लिए आवश्यक है।

दूसरा स्वप्न एशियाई जनता की मुक्ति और उसके पुनरुत्थान तथा मानव सभ्यता की प्रगति में उसकी महान भूमिका की ओर उसकी वापसी का था। एशिया जाग उठा है, इसके कई विशाल भाग अब पूर्णतः स्वतंत्र हैं और इस समय मुक्त हो रहे हैं, उसके अन्य स्थिर भाग या आंशिक भाग किसी न किसी संघर्ष के जरिए स्वतंत्रता की ओर बढ़ रहे हैं। आज या कल अब थोड़ा ही प्रयास करना है। वहाँ भारत को अपना अंशदान करना है और उसने अपनी ऊर्जा तथा योग्यता के साथ अंशदान करना शुरू किया है। इससे यह पहले ही उस स्थान और संभावना के परिमाण का संकेत मिलता है, जिसे वह राष्ट्र-परिषद् में उपलब्ध कर सकता है।

तीसरा स्वप्न संपूर्ण मानवता के और अधिक स्वच्छ, उज्ज्वल एवं आदर्श

जीवन के बाह्य आधार से गठित विश्व संघ का था। उस मानवीय विश्व का एकीकरण अपनी प्रक्रिया में है। वहाँ एक अपूर्ण अनुकृति है, परंतु भयंकर कठिनाइयों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए। चरमोत्कर्ष वहीं है और उसे बढ़ना चाहिए तथा जीत हासिल करनी चाहिए। यहाँ भी भारत ने प्रमुख भूमिका निभाना शुरू कर दिया है और यदि वह मौजूदा तथ्यों और त्वरित संभावनाओं की सीमा से मुक्त एवं भविष्य में देखनेवाला और उसे निकट लानेवाला नेतृत्व विकसित कर पाये तो उसकी मौजूदगी से धीमी और तीव्र एवं सुस्पष्ट और सत्वर विकास की दूरी समाप्त हो जाएगी। जो कुछ हो रहा है उसमें एक महाविपत्ति व्यवधान डालेगी, हस्तक्षेप करेगी और नष्ट करेगी, फिर भी अंतिम परिणाम अवश्यंभावी होगा। एकीकरण के लिए प्रकृति की आवश्यकता एक अपरिहार्य गतिविधि है। राष्ट्रों के लिए भी इसकी आवश्यकता स्पष्ट है, क्योंकि इसके बिना छोटे राष्ट्रों की स्वतंत्रता किसी क्षण खतरे में पड़ सकती है और बड़े तथा शक्तिशाली राष्ट्रों का जीवन भी असुरक्षित हो सकता है। अतः एकीकरण सब के हित में है। मनुष्य की मूढ़ता तथा जड़ स्वार्थपरता ही इसे बाधित कर सकती है, परंतु प्रकृति की आवश्यकता तथा ईश्वरीय इच्छा के बिना ये चीज़ें हमेशा जीवित नहीं रह सकतीं। परंतु बाह्योन्मुख आधार पर्याप्त नहीं है, अंतर्राष्ट्रीय भावना और दृष्टिकोण पैदा हो, विभिन्न संस्कृतियों के मेल तथा द्विपक्षीय या बहुपक्षीय नागरिक संगठन—जैसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रारूप और संस्थाएँ सामने आयें। तब राष्ट्रवाद अपना इष्टसाधन कर चुका होगा और अपनी प्रखरता खो चुका होगा, उसे अब इन चीज़ों को आत्म-संरक्षण तथा दृष्टिकोण की समग्रता प्राप्त नहीं होगी। मानव-जाति पर एकत्व की एक नई भावना का अधिकार हो जाएगा।

भारत की ओर से विश्व को आध्यात्मिक भेंट का एक और स्वप्न कार्यकर हो चुका है। भारत की आध्यात्मिकता सदैव वृद्धिमान परिणाम के साथ यूरोप और अमेरिका में प्रवेश कर रही है। यह गतिविधि बढ़ेगी, काल की विपदाओं के बीच आशा से भरी अधिक से अधिक आँखें भारत की ओर देख रही हैं और वहाँ केवल उसकी शिक्षाओं के प्रति ही नहीं, उसके मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक साधन के प्रति समर्पण की वृद्धिमान भावना भी मौजूद है।

अंतिम स्वप्न विकास की ओर उन्मुख उस कदम से संबंधित है, जो मनुष्य को एक उच्चतर और सुविस्तृत चेतना के लिए जाग्रत करेगा तथा उन समस्याओं का समाधान प्रारम्भ करेगा, जिन्होंने मनुष्य को उसी समय से उद्विग्न और परेशान कर रखा है, जब मनुष्य ने पहली बार व्यक्ति की पूर्णता तथा एक पूर्ण समाज के बारे में सोचना एवं स्वप्न देखना शुरू किया। यह सोच अब भी व्यक्तिगत आशा, धारणा और आदर्श के रूप में है, जिसने भारत तथा

पश्चिम दोनों जगह भविष्यदर्शी चिन्तकों को प्रभावित करना शुरू कर दिया है। इस रास्ते में जो कठिनाइयाँ हैं, वे उद्यम के किसी अन्य क्षेत्र की कठिनाइयों से कहीं ज़्यादा विकट हैं, किन्तु कठिनाइयाँ परामूत होने के लिए होती हैं और यदि सर्वोच्च 'शक्ति' का अस्तित्व है तो ये अवश्य परामूत होंगी। यहाँ भी यदि यह विकास निष्पन्न होना है और यह आत्मा के विकास तथा आन्तरिक चेतना से उद्भूत होना है तो शुरुआत भारत से होगी; इसका क्षेत्र सर्वव्यापक होगा, किन्तु केन्द्रीय गतिविधि भारत की होगी।

भारत के स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर मेरी यही भावनाएँ हैं, यह नवीन और स्वतंत्र भारत पर निर्भर करेगा कि यह प्रत्याशा कहाँ तक उचित है?

श्रीअरविंद के जीवन की प्रमुख घटनाएँ

1872 : 15 अगस्त को कलकत्ता में। को पिता डा० कृष्णघन घोष और माता स्वर्णलता देवी। माता महान देशभक्त और आदर्शवादी ऋषि राजनारायण बोस की पुत्री।

1879 : श्रीअरविन्द इंग्लैंड ले जाये गये और मैनचेस्टर में ड्रिवेट दंपति की निगरानी में रहने लगे।

1879-83 : श्री ड्रिवेट से लैटिन और फ्रेंच भाषाओं का ज्ञान-अर्जन, **'फॉक्स फैमिली मैगजीन'** में कविता लेखन।

1890 : छात्रवृत्ति लेकर कैम्ब्रिज के किंग्स कालेज में नामांकन। 'ट्रिपोज' के पहले वर्ष की परीक्षा उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण, आई. सी. एस. की प्रतियोगिता में उत्तीर्ण, परंतु घुड़सवारी की परीक्षा में शामिल नहीं हुए। 'इंडियन मजलिस' के सचिव।

1892 : भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयास करनेवाले गोपनीय संगठन **'लोटस एँड द डैगर'** की लंदन में स्थापना।

1893 : बड़ौदा के गायकवाड़ से परिचय। बड़ौदा राजकीय सेवा में नियुक्ति। विदेश से पुनः वापसी। बंबई के अपोलो बंदरगाह पर भारतीय मिट्टी से उनके पैरों का स्पर्श होते ही पूर्ण शांति का अनुभव-जो उनका प्रथम सघन आध्यात्मिक अनुभव था। बंबई के **'इंदु प्रकाश'** पत्र में क्रांतिकारी राजनीतिक विचारों से ओतप्रोत लेखों का सिलसिलेवार प्रकाशन। भारतीय साहित्य का गहन अध्ययन।

1901 : कलकत्ता में भूपाल चंद्र बोस की पुत्री मृणालिनी देवी से विवाह।

1902-05 : कई बार बंगाल की यात्रा करके गुप्त क्रांतिकारी संगठनों तथा राष्ट्रवादियों को उद्‌बोधित किया। योगाभ्यास आरंभ।

1905 : बंग विभाजन। ब्रिटेन विरोधी भावना का उन्नयन।

1906 : अवकाश के दिनों में बिपिनचन्द्र पाल के अनुरोध पर **'वंदेमातरम'** का संपादन भार ग्रहण। बड़ौदा में नौकरी से त्यागपत्र और कलकत्ता आकर नेशनल कालेज के प्राचार्य। भारत के राष्ट्रीय जागरण का उद्देश्य पूर्ण स्वराज्य है की घोषणा। स्वतंत्रता संघर्ष के लिए अपनी पाँच सूत्री योजना प्रस्तुति की।

1907 : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का ऐतिहासिक सूरत अधिवेशन। राष्ट्रवादियों तथा उदारतावादियों में विघटन। राष्ट्रवादियों द्वारा श्रीअरविंद की अध्यक्षता में अधिवेशन का अलग आयोजन। **'बंदेमातरम'** के विरुद्ध सरकार द्वारा राजद्रोह का मुकदमा। आरोप विफल सिद्ध हुए।

1908 : अलीपुर षड्यंत्र से संबंधित मामले में गिरफ़्तार। जेल में आध्यात्मिक अनुभव-तरंगों से साक्षात्कार।

1909 : जेल से रिहा। 'धर्म' तथा 'कर्मयोगिन' का संपादन।

1910 : अंतरात्मा की पुकार पर पांडिचेरी प्रस्थान। 'कर्मयोगिन' में तथाकथित राजद्रोह से संबंधित लेख छापने के आरोप में सरकार द्वारा गिरफ्तारी का वारंट। किये—पांडिचेरी में योगाभ्यास में संलग्न।

1914 : मासिक पत्र **'आर्य'** का संपादन, जिसमें सभी प्रमुख रचनाएँ धारावाहिक रूप से प्रकाशित।

1918 : कलकत्ता में मृणालिनी देवी की मृत्यु।

1920 : श्रीअरविंद की आध्यात्म-साधना में सहयोगिनी **'माँ'** का पांडिचेरी आगमन। आश्रम के विकास का सूत्रपात।

1926 : आध्यात्म की शब्दावली में जिसे 'अधिमन' कहा गया, उस पर श्रीअरविंद की 'सिद्धि'। इससे एक नई शक्ति 'सर्वोच्च मन' के अवरोह का मार्ग प्रशस्त हुआ, जो मनुष्य को विकास के उच्चतर स्तर पर पहुँचाने में सक्षम था।

1942-45 : सहयोगी शक्तियों पर विजय के लिए श्रीअरविंद द्वारा आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग। क्योंकि उन्होंने अपनी सृजनदृष्टि में देखा कि हिटलर की विजय का अर्थ होगा, मानव विकास की योजना पर एक बहुत बड़ी चोट।

1947 : 15 अगस्त भारत को स्वतंत्र हुआ, जो संयोगवश अरविंद का 75 वाँ जन्म दिन था।

1950 : 5 दिसंबर को श्रीअरविंद का देहावसान। पाँच दिनों तक वह मृत शरीर ज्योतिर्मय दिखता रहा। उस पर अपघटन का लेशमात्र भी चिह्न नहीं था। 9 दिसंबर को मृत शरीर महासमाधि में रखा गया।

श्रीअरविंद की रचनाएं : संक्षिप्त ग्रंथ-सूची

श्रीअरविंद की संपूर्ण रचनाएँ श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी द्वारा प्रकाशित 'द श्रीअरविंद बर्थ सेन्टेनरी लाइब्रेरी' शीर्षक से 30 खंडों में उपलब्ध हैं।

प्रमुख आध्यात्मिक तथा महत्त्वपूर्ण साहित्यिक और समाजशास्त्रीय रचनाओं को यहाँ उसी क्रम में प्रस्तुत किया जा रहा है, जिस क्रम में वे पुस्तकाकार प्रकाशित हुई थीं :—

1895 : **'सांग्स टु मिर्तिल्ला एंड अदर पोएम्स'**, लक्ष्मी विलास प्रिंटिंग प्रेस बड़ौदा।

1896 (अनुमानित) : **'उर्वशी'**, लक्ष्मीविलास प्रिंटिंग प्रेस, बड़ौदा।

1911 : **'विक्रमोर्वशी'**, कुंतलिनी प्रेस, कलकत्ता।

1915 : **'अहन एंड अदर पोएम्स'**, द मार्डर्न प्रेस, पांडिचेरी।

1918 (अनुमानित) : **'द आइडियल ऑफ कर्मयोगिन'** प्रथम संस्करण अनुपलब्ध।

1919 : **'द उत्तरपाड़ा स्पीच'**, प्रवर्तक पब्लिशिंग हाउस, चंदन नगर।

'द आइडियल ऑफ़ ह्यूमैन यूनिटी', सन्स ऑफ इंडिया लिमिटेड, मद्रास।

1920 : **'वार एंड सेल्फ डिटर्मिनेशन'**, एस. आर. मूर्ति एंड क०, मद्रास।

1921 : **'द योग एंड इट्स आब्जेक्ट्स'**, प्रवर्तक पब्लिशिंग हाउस, चंदन नगर।

'लव एंड डेथ', वसंत प्रेस, मद्रास।

1922 : **'एस्सेज ऑन द गीता'**, प्रथम माला, व्ही. रामस्वामी शास्त्रुलु एंड सन्स, मद्रास,

द्वितीय माला : आर्य पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता।

1924 : **'द मदर'** आर्य साहित्य भवन, कलकत्ता।

1933 : **'द रिड्स ऑफ दिस वर्ल्ड'**, आर्य पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता।

1935 : **'लाइट्स ऑन योग'**, श्रीअरविंद लाइब्रेरी, हावड़ा।

1936 : **'बेसेज ऑफ़ योग'**, आर्य पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता।

1939 : **'द लाइफ डिवाइन'**, खंड-1, आर्य पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता।

1940 : **'द लाइफ डिवाइन'**, खंड-2, आर्य पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता।

1942 : **'कलेक्टेड पोएम्स एंड प्लेज़'**, (दो खंडों में), श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी।

1946 : **'हीमन्स टु द मिस्टिक फायर'**, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी

1949 : **'द ह्यूमैन साइकिल'**, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी

1950 : **'सावित्री—ए लीजेण्ड एंड ए सिम्बल**, खंड-1

1951 : **'सावित्री—ए लीजेण्ड एंड ए सिम्बल**, खंड-2, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी

1953 : **'एट उपनिषद्स'**, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी।

'द फाउंडेशन्स ऑफ इंडियन कल्चर', श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी

'श्रीअरविंद ऑन हिमसेल्फ एंड ऑन द मदर', श्रीअरविंद इंटरनेशनल सेंटर ऑफ एडुकेशन, पांडिचेरी।

1955 : **'सिन्थेसिस ऑफ योग'**, श्रीअरविंद इंटरनेशनल सेंटर ऑफ़ एडुकेशन, पांडिचेरी

'ऑन द वेद', श्रीअरविंद इंटरनेशनल सेंटर ऑफ एडुकेशन पांडिचेरी।

1956 : **'सांग्स ऑफ़ विद्यापति'**, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी।

1957 : **'इलियन'**, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी।

1958 : **'रोडोगुन'**, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी।

1959 : **''द वजीर्स ऑफ बसरा'**, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी।

—o—

भारतीय साहित्य के निर्माता

भारतीय साहित्य के इतिहास-निर्माण की दीर्घ यात्रा में जिन महान् प्राचीन अथवा अर्वाचीन प्रतिभाओं ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है, उनका परिचय सामान्य पाठकों तक पहुँचाने के उद्देश्य से इस पुस्तकमाला का प्रकाशन आरम्भ किया गया है, जिसके अन्तर्गत अब तक हिन्दी में निम्नांकित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं :

लक्ष्मीनाथ बेज़बरुआ	हेम बरुआ
बंकिमचन्द्र चटर्जी	सुबोधचन्द्र सेनगुप्त
बुद्धदेव बसु	आलोकरंजन दासगुप्त
चण्डीदास	सुकुमार सेन
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	हिरण्मय बनर्जी
जीवनानन्द दास	चिदानन्द दासगुप्त
काज़ी नज़रुल इस्लाम	गोपाल हालदार
महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर	नारायण चौधुरी
माणिक बन्द्योपाध्याय	सरोजमोहन मित्र
माईकेल मधुसूदन दत्त	अमलेन्दु बोस
प्रमथ चौधुरी	अरुणकुमार मुखोपाध्याय
राजा राममोहन राय	सौम्येन्द्रनाथ टगोर
ताराशंकर बन्द्योपाध्याय	महाश्वेता देवी
श्रीअरविन्द	मनोज दास
सरोजिनी नायडू	पद्मिनी सेनगुप्त
तरुदत्त	पद्मिनी सेनगुप्त
गोवर्धनराम	रमणलाल जोशी
मेघाणी	वसन्तराव जटाशंकर त्रिवेदी
नानालाल	उमेदभाई मणियार
नर्मदाशंकर	गुलाबदास ब्रोकर
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	मदन गोपाल
बिहारी	बच्चन सिंह
देवकीनन्दन खत्री	मधुरेश
घनानन्द	लल्लन राय
हरिऔध	मुकुन्ददेव शर्मा
जयशंकर प्रसाद	रमेशचन्द्र शाह
जायसी	परमानन्द श्रीवास्तव
कबीर	प्रभाकर माचवे
केशवदास	जगदीश गुप्त
महावीर प्रसाद द्विवेदी	नन्दकिशोर नवल
नन्ददुलारे वाजपेयी	प्रेमशंकर
प्रेमचन्द	प्रकाशचन्द्र गुप्त
राहुल सांकृत्यायन	प्रभाकर माचवे
रैदास	धर्मपाल मैनी
श्यामसुन्दर दास	सुधाकर पाण्डेय
सुभद्रा कुमारी चौहान	सुधा चौहान

बी० एम० श्रीकंठय्य	ए० एन० मूर्तिराव
बसवश्वर	एच० थिप्पेरुद्रस्वामी
विद्यापति	रमानाथ झा
ए० आर० राजराज वर्मा	के० एम० जॉर्ज
चन्दु मेनन	टी० सी० शंकर मेनन
कुमारन् आशान	के० एम० जॉर्ज
महाकवि उल्लूर	सुकुमार अषिकोड
वल्लत्तोल	बी० हृदयकुमारी
दत्तकवि	अनुराधा पोतदार
ज्ञानदेव	पुरुषोत्तम यशवन्त देशपाण्डे
हरिनारायण आपटे	रामचन्द्र भिकाजी जोशी
केशवसुत	प्रभाकर माचवे
नामदेव	माधव गोपाल देशमुख
नरसिंह चिंतामण केलकर	रामचन्द्र माधव गोले
श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर	मनोहर लक्ष्मण वराडपांडे
तुकाराम	भालचन्द्र नेमाड़े
फ़क़ीरमोहन सेनापति	मायाधर मानसिंह
राधानाथ राय	गोपीनाथ महन्ती
सरलादास	कृष्णचन्द्र पाणिग्राही
भाई वीर सिंह	हरबंस सिंह
दुरसा आढ़ा	रावत सारस्वत
जाम्भोजी	हीरालाल माहेश्वरी
मुंहता नैणसी	बृजमोहन जावलिया
प्रिथीराज राठौड़	रावत सारस्वत
सूर्यमल्ल मिश्रण	विष्णुदत्त शर्मा
बाणभट्ट	के० कृष्णमूर्ति
भवभूति	गो० के० भट
जयदेव	सुनीति कुमार चटर्जी
कल्हण	सोमनाथ धर
क्षेमेन्द्र	ब्रजमोहन चतुर्वेदी
माघ कवि	चण्डिकाप्रसाद शुक्ल
सचल सरमस्त	कल्याण बू० आडवाणी
शाह लतीफ़	कल्याण बू० आडवाणी
भारती	प्रेमा नन्दकुमार
इलंगो अडिगल	मु० वरदराजन
कम्बन	एस० महाराजन
माणिक्कवाचकर	जी० वंमीकनाथन
पोतन्ना	दिवाकर्ल वेंकटावधानी
वेदम वेंकटराय शास्त्री	वेदम वेंकटराय शास्त्री (कनिष्ठ)
गुरजाड	नार्ल वेंकटेश्वर राव
वीरेशलिंगम्	नार्ल वेंकटेश्वर राव
वेमना	नार्ल वेंकटेश्वर राव
ग़ालिब	मुहम्मद मुजीब

अलीपुर मुकदमे के समय श्रीअरविंद की ओर से पैरवी करते हुए देशबन्धु चित्तरंजनदास ने 'देशभक्ति के कवि, राष्ट्रवाद के अग्रदूत और मानवता के प्रेमी' के रूप में उनका वर्णन किया था। इस विनिबंध में मनोज दास ने श्रीअरविंद के इन तीन पक्षों पर विशेष ध्यान दिया है। अलीपुर मुकदमों से मुक्त होने के कुछ दिन बाद श्रीअरविंद पांडिचेरी चले गये और अपनी यौगिक उपलब्धियों के परिणामस्वरूप उन्होंने 'द लाइफ़ डिवाइन' और महान् प्रतीकात्मक महाकाव्य 'सावित्री' में भविष्य के प्रति अपने दृष्टिकोण की रूपरेखा प्रस्तुत की। मनोज दास ने श्रीअरविंद के जीवन के इस परवर्ती तथा महानतम पक्ष पर भी उचित ध्यान दिया है।

कुल मिलाकर, यह हमारे साहित्य और आधुनिक भारत के निरपवाद निर्माताओं में से एक के बारे में तथ्यपरक एवं अंतदृष्टि-समृद्ध विनिबंध है।

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15·00
SAHITYA AKADEMI